सत्य-सरोवर

ॐ

लेखक

जैन धर्म दिवाकर जैन आगम रत्नाकर साहित्य रत्न आचार्य-सम्राट
परम श्रद्धेय परम पूज्य श्री आत्मा राम जी महाराज
के
शिष्य
मुनि-मनोहर 'कुमुद'

प्रकाशक
महावीर जैन प्रकाशक सोसाइटी
द्रव्य दाता
ऐस ऐस जैन संघ, पटियाला

प्रथम बार १००० १९५६ मूल्य ॥)

लेखक की

मनोहर रचनाएं

१ प्रकाश पुंज
२ [illegible]
३ विश्व विभूति
४ विश्व ज्योति
५ [illegible] और [illegible]
६ दीपक के मोती
● ७ [illegible] (जो प्रेस में छप रहा है)

मिलने का पता

ऐम ऐस जैन सभा, लुधियाना

● जैनको, १७, शाह नशीन बाजार, पटियाला

समर्पण

सादर सविनय

समर्पण

अपने परम पूज्य

गुरुदेव

के

पुनीत

पाद-पद्मों मे

मुनि मनोहर 'कुमुद'

Printer
MANJIT PRINTING & PUBLISHING CO.,
NEAR DERA BABA JASSA SINGH,
PATIALA. Te No 309

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं
अहिंसा संजमो तवो
देवावि तं नमंसंति
जस्स धम्मे सया मणो ॥

जैन धर्म
अहिंसा, सयम और तप
की
त्रिवेणी है ।

मानसर ! तू धन्य है। जिस के पावन तट पर मन के उजले और तन के उजले हंस-शावक सदा विहार करते हैं। "दूध का दूध और पानी का पानी" की अनमोल और अद्भुत कला में जिन की चोंचें सदा प्रवृत्त हैं।

मुनि मनोहर 'कुमुद'

दो वचन

पाठक वृन्द ! यह एक अनुपम पुस्तक आप के कर-कमलों में अर्पण करते हुए हर्ष से उद्भूत हो रहा है। इस पुस्तक का नाम है 'तत्व-सरोवर' क्योंकि इस में आप को धर्म की झांकी मिलेगी और साथ ही साथ का दर्शन होगा यदि विचार करें। मैं ने अपना पुस्तक भवन की आधार शिला उस स्थान को बनाया है जो आप सन्तों की वाणी का पहला भूषण है और जिस का दर्शन हम को दशवैकालिक सूत्र के पहले अध्ययन के प्रथम सूत्र से आरम्भ होता है। यह गाथा जैन धर्म का सर्वस्व है। आगम सागर का पहला मोती और आनन्द भवन की पहली ईंट है यह गाथा। यह गाथा अपने में जैनत्व का 'गागर में सागर' की तरह छुपाये हुए है। मोक्ष का प्रथम और अन्तिम सोपान यही है। इस लिए इसी गाथा को लक्ष्य बना कर मैं ने अपना पुस्तक का निर्माण किया है। आप इस ने प्रथम से लिये और आरम्भ से अन्त तक इस में विचार कर इस के सौंदर्य का अवलोकन करें। इस में आप को अहिंसा, संयम और तप की इन भव्य मूर्तियों के दर्शन होंगे और आप को निर्वाण सुख की ओर जाने का संकेत हर पृष्ठ की एक एक ईंट पर।

मैं ने इस को रचा है अत्यन्त परिश्रम से, किन्तु फिर भी त्रुटियां रह गई होंगी जिन के लिये क्षमा प्रार्थी हूँ।

आप का

मुनि महेन्द्र 'कुमुद'

असार-संसार

जब हम अपने चारों ओर फैले हुये इस लम्बे चौड़े संसार म दृष्टि घुमा कर देखते हैं तो पता चलता है कि हर प्राणी के हृदय गगन में शान्ति की मन्य कामना विहार कर रही है और उसे अपने जीवन पिंजरे में लाने के लिये निरन्तर प्रयत्न भी किये जाते हैं, किन्तु बहुत से प्रयास विफलता के वायों से आहत होते देखे गये हैं क्योंकि सच्ची शान्ति क्या है? कहा है? और कब और कैसे उसे अपने हृदय-कोष में रखा जाता है, इस रहस्य को जानते हैं बहुत कम लोग। यही तो कारण है कि प्राणी शान्ति की चाह रखता हुआ भी और उस के लिये यत्न मगीरथ करता हुआ भी शान्ति से कोसों दूर देखा जाता है। यह बात तो सोलह आना सत्य है कि मनुष्य अशान्ति का नाम सुनना और उस के अमङ्गल दर्शन करना चाहता ही नहीं, किन्तु फिर भी सग दुख की खाइयों में गिरा और कराहता हुआ पाया जाता है। इस के कारण की खोज आवश्यक है।

विश्व सारा भौतिक है, इस के कण कण में नश्वरता का नग्न नृत्य हो रहा है। वास्तव में भौतिकता के ये ही कण अपनी सुख सरिता के प्रवाह के कारण हैं। जब ये कण अपनी नश्वरता को अन्तिम अंगड़ाई ले कर बिखर जाते हैं तो हमारी शान्ति की समस्त कल्पनाएँ विनाश के अनन्त सागर में उतर कर विलीन हो जाती हैं। जैसा कारण होता है, कार्य भी वैसा ही देखा जाता है। यह एक सत्य सिद्धान्त है। जब हमारी सुख तलैया का उद्‌गम स्थान ही नश्वर और क्षणिक है तो बताइये इस का प्रवाह चिरन्तन कैसे हो सकता है? कदापि नहीं। यदि आप अपनी जीवन-यात्रा काटना चाहते हैं सुख से, तो आप को समग्र मायावी वस्तुओं की आसक्ति का परित्याग करना होगा।

माना कि दुनिया के पदार्थ आकर्षक एवं मन मोहक है, जीव बरबस इन की आसक्ति के तन्तुओं से लिपटता जाता है, अमर बेल की न्याईं यह आसक्ति मनुष्य को चारों ओर से बांध लेता है और उस के जीवन रस को चूस कर जीवन वृक्ष को ठूंठ बना कर रख देती है। विश्व में परिवर्तन का सुदर्शन चक्र सा चल रहा है। हर संयोग की पिटारी में वियोग का काला नाग अपना फन उठाये बैठा है। सुख की हर यवनिका के पीछे दुःख छिपा हुआ है। हर अमावस पूर्णिमा की बाट जोह रहा है। प्रभात की हर किरण संध्या के अन्धकार में छिपती जाती है। हर्ष और शोक का आंख मिचौनी चल रही है। आकाश के टिमटिमाते दीपक और मतरंगा आसमानी पींग परिवर्तनशील संसार का पोल खोलने के लिये तो आती है। कहां तक लिखा जाए, संसृति के हर कण में विनाश झांक रहा है। आज जो मङ्गल है, कल वह ही अमङ्गल नजर आता है। सुख के स्वप्न टूटते जाते हैं और दुःख की घड़ियां पास आती जाती हैं, कभी कांटे शत्रुता के टूटते जाते हैं और मित्रता के फूल खिलने लगते हैं। यह लो, जीवन में बसन्त आ गया। मन मयूर बन कर नाच उठा। वाणी कोकिला सी बोलने लगी। जीवन पवन की तरह सर सर आगे बढ़ने लगा। मुख कमल खिल गया। अधरों से लगे छूटने हंसी के फव्वारे। सारा जीवन हरा भरा हो गया। यह है जीवन का बसन्त। हाय! गया बसन्त, आ गया पतझड़! सुख के फूल सब झड़ गये। आशाओं की टहनियां सब टूट गई। जीवन-उपवन के कण कण पर दुःख-पीतिमा पोत दी गई। वाणी कोयल मूक है। हृदय केका अपना नृत्यकला मानों भूल गया है। यह है जीवन का शिशिर। जगत का यह उतराव और चढ़ाव अपना क्षणिकता का मानों घोषणा कर रहा है। इस बात की और पुष्टि के लिये कुछ एक उदाहरण भी आप की सेवा में उपस्थित कर ही देता। चाहता हूं, जरा ध्यान तो कीजिये—

जरा कल्पना कीजिये, कि किसी के गृह-प्राङ्गण में अपने पुत्र की

उत्साह-सामग्रियाँ बिखर रही हैं। माँ के हृदय-सागर में हर्ष-ऊर्मियाँ उठ रही हैं। पिता का मन-विहग प्रसन्नता का नीड़ बना रहा है और स्वयं उस युवक की मानस धरती में अपने भविष्य की मधुर आशाओं के नवाङ्कुर फूट रहे हैं। स्वजनों परिजनों के कलेजे बल्लियों उछल रहे हैं। चारों ओर से 'बधाई हो' की सुमधुर ध्वनियाँ आ रही हैं। अब ज़रा दूसरी ओर भी चलिये कन्या के घर के द्वार पर। वहाँ भी देखिए, कैसा आनन्द छा रहा है! यहाँ की ठाठ का तो कहना ही क्या है! घर को सजाया जा रहा है। वर के शुभागमन पर 'स्वागतम्' करने के लिये गलियाँ सज रही हैं पत्र द्वारों और झंडियों से। वन्दनवार गृह द्वारों की शोभा बढ़ा रहे हैं। माँ बाप अपने सर से एक भार उतार कर हलके हो जाना चाहते हैं। युवती अपने जीवन-साथी के चन्द्र मुख के दर्शन के लिए उत्सुक हो रही है। बरातों की दो उमगती मरालें एक दूसरे के बाहु-पाश में बंध जाना चाहता है। मधु मिलन की शुभ घड़ी के शुभागमन की शुभ छाया लग रही है और न जाने कितनी आशाओं के दीपक हृदय-मन्दिर में संजोये जा रहे हैं। आखिर वह दिन आ ही गया जिस की प्रतीक्षा करते पलकें थक गई थीं। जिस महामिलन पर हर जीवन का फूल, फूल फूल कर फूला नहीं समाता।

किन्तु हा! भाग्य की पिटारी में न जाने क्या कुछ छुपा होता है। सहसा दुर्भाग्य की चल पड़ी आँधी, आशाओं के दीप सब बुझ गये। कामनाओं के सुन्दर भवन सब ढह गये। जीवन डाली पर खिले दो कोमल-कुसुम, एक टूट कर गिर पड़ा पृथिवी पर और उसे उठा कर चढ़ा दिया गया आग की जलती-बलती चिता पर, और दूसरा छोड़ दिया गया उमर की डाल पर, सदा विरह-आग में जलने के लिये।

जिन आँखों में थी मस्ती उन से बह रही है आँसुओं की गंगा। शरीर का हर अंग था शोभा का भंडार अब है श्रीविहीनता का आगार। जिन अधरों पर था मुस्करित हास, उन पर है अब मूक शोक मुख-लालिमा सब गायब! बाल सब अस्त व्यस्त! माँग का सिन्दूर और

मार्य की निन्दी धार ! समाज के निठुर पिंजरे की एक पतिता का करुण मन्दन हो रहा है। सुख के फूल दुख के त्रिशूल बन गये। हर आशा निराशा बन कर खाने लगी । हा ! कितना नश्वर है यह संसार ! कितना क्षणिक है यह मायावी सम्मिलन ! हर क्षण का प्रलय उस की गोद में ही रहता है। भला ऐसे अशाश्वत संसार से शाश्वत सुख शान्ति की आशा रखना क्या भूल नहीं ? भूल ! भारी भूल !! यही तो जीव की अज्ञानता है और अविवेकिता जिसे हम दूसरे शब्दों में 'मोह जाल महा कराल" भी कह सकते हैं ! मोह के नाग-पाश में फंसा हुआ प्राणी सुख के स्वप्न भी नहीं देख सकता, उस पर दुख का छाया तो सदा पड़ता ही रहेगा। उस की भाग्य पत्रिका में 'शान्ति' शब्द ढूंढे से भी नहीं मिलेगा आप को। उस के ललाट पर दुख की चिन्ता सदा अंकी मिलेगी। उस की आँखें आप गीली पायेंगे। देखा जाये तो शान्ति का स्थान कहीं और ही है जिसे पाने के लिये एक दीपक चाहिये। दीपक मिट्टी का नहीं, जो अपनी नन्ही सी प्रभा से एक मिट्टी के घर में अपना वैभव बिखेरता है बल्कि ज्ञान का एक चम चमाता हुआ प्रदीप, प्रबल वायु के सबल झोंकों से परास्त न होने वाला। क्योंकि अन्तरजगत के भाव तिमिर के मिटे बिना सत्यं शिवं सुन्दरं की संप्राप्ति हो नहीं सकती। और मनुष्य अनन्त समय तक संसार चक्र में एक अण्डे की तरह लुढ़कता रहता है !

आप ने देखा होगा कभी, कि जब तक पक्षी अण्डे के अन्दर रहता है तब तक वह पराधीन है। एक नन्हा सा बालक भी उसे पकड़ कर इधर उधर लुढ़का देता है। उसकी समस्त शक्तियां अविकसित एवं अप्रकट होती हैं। इसलिये बिचारा परवशता में दुख सहता है। किन्तु जब अण्डा फूटने पर वह बाहर की हवा में अपना प्रथम सांस लेता है तो उसके जीवन में किंचित स्फूर्ति होती है किन्तु इतनी नहीं, जिस से उस की पराधीनता की बेड़ियां टूट जायें और वह स्वतन्त्र हो कर आकाश के असीम पिंजरे में उड़ सके। धीरे धीरे उसका शरीर पुष्ट होता जाता

है। उसके अंगों में चेतना आता जाता है उस की पाँखे उड़ने की कला में प्रवीण होना जाती हैं। उस की आँखें खुल कर दूर दिशा का पूरा चित्र खींच लेती हैं। एक दिन हमारी आँखें उसे आकाश की ऊंचाईयों में उड़ता हुआ देखता हैं और उस की विचित्र उलट बाजियों से लाखों जन मानस हर्ष के पलने पर झूल जाते हैं। अब किसकी शक्ति है जो उसे अपनी इच्छा के धागे से बान्ध सके और उसे जिधर चाहे उधर लुढ़का दे? अब दिशा दिशा की यात्रा कर के लौट आना अपने घोंसले में क्या उस के लिये कोई कठिन काम है? शिकारी के जालों से बच निकलना भी उस पक्षी के लिये एक खेल ही है। यदि उसके नेत्र फूट जायें और पांखें टूट जायें फिर उस की क्या दशा होगा भला? नितान्त दुर्दशा। अपने घोंसले से सरक कर गिर जाना उस के लिये एक साधारण सी बात होगी और हो सकता है कि वह किसी भूखे प्राणी के मुख का ग्रास बन जाये। बस वह मनुष्य जिस के पास नहीं है ज्ञान के नेत्र, और नहीं हैं जिस के साथ चरित्र के सुदृढ़ पँख, वह कदापि नहीं उड़ सकता शान्ति के अन्तरिक्ष में। उसकी सब शक्तियां दुरुपयोग से खेलती रहेंगी, जिस का भयंकर परिणाम सदैव उस की आँखों के सामने नाचता रहेगा। सावन बरसता रहेगा उसके पलकों के द्वार से, चिन्ता की आग में उस का मन शान्ति जलती रहेगी, अपनी अज्ञानता की बेल के कटु फल सब को खाने ही पड़ेंगे।

"जावंतऽ विज्जा पुरिसा सव्वे ते दुक्ख संभवा"

की भगवान वीर की मधुर उक्ति क्या कभी झूठी हो सकती है? अज्ञान की जड़ उखाड़े बिना शान्ति नहीं, अज्ञानी इसे संसार की मृगमरीचिका में खोजा करता है, बस निराशा के सिवाय और कुछ हाथ नहीं लगता। एक छोटा सा उदाहरण मेरी बात को और स्पष्ट कर देगा। जरा देखिये तो सही —

एक थी बुढ़िया। रहती थी किसी ग्राम में। अच्छी थी घर

माथे की बिन्दी आप ! समाज के निठुर पिंजरे की एक पक्षिणी का करुण क्रन्दन हो रहा है। मुख के फूल दुःख के निशूल बन गये। हर आशा निराशा बन कर भासने लगी। हा! कितना नश्वर है यह संबन्ध! कितना क्षणिक है यह मायावी सम्मिलन! हर क्षण का प्रलय उस की गोद में हो रहता है। भला ऐसे अशान्त संसार से शाश्वत सुख शान्ति की आशा रखना क्या भूल नहीं? भूल! भारी भूल!! यही तो जीव की अशान्ति है और अविवेकिता जिसे हम दूसरे शब्दों में "मोह जाल में फसना" भी कह सकते हैं! मोह के नाग-पाश में फंसा हुआ प्राणी सुख के स्वप्न भी नहीं देख सकता, उस पर दुःख की छाया तो सदा पड़ती ही रहेगा। उस का भाग्य पत्रिका में 'शान्ति' शब्द ढूंढे से भी नहीं मिलेगा आप का। उस के ललाट पर दुःख की बिन्दी सदा अंकी मिलेगी! उस की आंखें आप गीली पायेंगे! देखा जाये तो शान्ति का स्थान कहीं और ही है जिसे पाने के लिये एक दीपक चाहिये! दीपक मिट्टी का नहीं, जो अपनी नन्ही सी प्रभा से एक मिट्टी के घर में अपना वैभव बिखेरता है बलकि ज्ञान का एक चम चमाता हुआ प्रदीप, प्रबल वायु के सबल झोंकों से परास्त न होने वाला। क्योंकि अन्तर्जगत के सारे तिमिर के मिटे बिना सत्य शिवं सुन्दरं की संप्राप्ति हो नहीं सकती। और मनुष्य अनन्त समय तक संसार चक्र में एक अण्डे की तरह लुढ़कता रहता है।

आप ने देखा होगा कभी कि जब तक पक्षी अण्डे के अन्दर रहता है तब तक वह पराधीन है। एक नन्हा सा बालक भी उसे पकड़ कर इधर उधर लुढ़का देता है। उसकी समस्त शक्तियां अविकसित एवं अप्रकट होती हैं। इसलिये बिचारा परवशता में दुःख सहता है। किन्तु जब अण्डा फूटने पर वह बाहर की हवा में अपना प्रथम सांस लेता है तो उसके जीवन में किंचित स्फूर्ति होती है किन्तु इतना नहीं, जिस से उस की परवशता की बेड़ियां टूट जायें और वह स्वतन्त्र हो कर, आकाश के असीम पिंजरे में उड़ सके। धीरे धीरे उसका शरीर पुष्ट होता जाता

है। उसके अंगों में चेतना आती जाती है उस का पाँखें उड़ने की कला में प्रवीण होता जाता है। उस का आँखें खुल कर दूर दिशा का पूरा चित्र खींच लेती हैं। एक दिन हमारी आँखें उसे आकाश की ऊंचाईयों में उड़ता हुआ देखता हैं और उस की विचित्र उलट बाजियों से लाखों जन मानस हर्ष के पलने पर झूल जाते हैं। अब किसकी शक्ति है जो उसे अपनी इच्छा के धागे से बांध सके और उसे जिधर चाहे उधर मुड़का दे? अब दिशा दिशा का यात्रा कर के लौट आना अपने घौंसले में क्या उस के लिये कोई कठिन काम है? शिकारी के बाणों से बच निकलना भी उस पक्षी के लिये एक खेल ही है। यदि उसके नेत्र फूट जायें और पाखें टूट जायें फिर उस की क्या दशा होगी भला? नितान्त दुर्दशा। अपने घौंसले से सरक कर गिर जाना उस के लिये एक साधारण सी बात होगी और हो सकता है कि वह किसी भूखे प्राणी के मुख का ग्रास बन जाये। बस यह मनुष्य जिस के पास नहीं है ज्ञान के नेत्र, और नहीं है जिस के साथ चरित्र के सुन्दर पँख, वह कदापि नहीं उड़ सकता शान्ति के अन्तरिक्ष में। उसकी सब शक्तियां दुरुपयोग से मिलती रहेंगी, जिस का भयंकर परिणाम सदैव उस की आँखों के सामने नचता रहेगा। शासन बरसता रहेगा उसके पलकों के द्वार से, चिन्ता की आग में उस की मन शान्ति जलती रहेगी, अपनी अज्ञानता की बेल के कटु फल सब को खाने ही पड़ेंगे।

"जाणउ विजा पुरिसा सव्वे ते दुक्ख सम्भवा"

की भगवान वीर की मधुर उक्ति क्या कभी झूठी हो सकती है? अज्ञान की जड़ उखाड़े बिना शान्ति नहीं, अज्ञानी इसे संसार की मृगमरीचिका में खोजा करता है, वहां निराशा के सिवाय और कुछ हाथ नहीं लगता। एक दृश्य सा उदाहरण मेरी बात को और स्पष्ट कर देगा। जरा देखिये तो सही —

एक थी बुढ़िया। रहती थी किसी ग्राम में। अच्छी थी घर

स्वभाव की। सब का भला चाहने वाली पर बड़ा भाग्य हीन था वह। दरिद्रता की उस पर विशेष कृपा थी। उस के परिवार में उसका कोई भी नहीं था, अकेला एक वह था अपनों के वियोग में रो धो के लिये, चरखा कात कर अपना पेट पालता था वह। एक टूटी फूटी घास की झोंपड़ी ही उस का सर्वस्व था। दिन में भगवान भास्कर की रश्मियां उस की झोंपड़ी में खेलती रहतीं और रात्रि का चन्द्र अपना शीतल चान्दना उस कुटिया पर बिखेर देता। किन्तु रात अन्धेरी जब होती तब उस की झोंपड़ी में दिये का एक दाना भी न होता जो अन्धकार का सामना कर सकता। फटे पुराने वस्त्र उस की लाज को ढांपने के लिये पर्याप्त थे। भरता हो उस के जिये रोटियां थीं। झोंपड़ी के हर तिनके से सूनापन निकल रहा था। अपने अधभरे पेट पर हाथ रख कर, चुप चाप अपने राम का नाम ले कर सो जाती।

एक दिन रात अन्धेरी थी, बिचारी बुढ़िया के चरखे की तकली कहीं खो गई। सारी ढूंढी उस ने, किन्तु सब व्यर्थ, क्योंकि घोर अन्धेरे में कुछ सूझता ही न था। दीपक उस बिचारी के पास था ही नहीं जो जला लिया जाता। इधर उधर अन्धेरे में टटोला तो बहुत, किन्तु कुछ हाथ न लगा। व्याकुल सी हो कर चली आई बाहर। बुढ़िया के बाहर आ कर खड़ी हो गई और लगी किसी की राह देखने। कुछ देर के पश्चात वहां से एक युवक गुजरा। माई बोल उठी, 'बेटा बेटा ! मेरी तकली तो ढूंढ दे !' 'कहां खो गई तकली तुम्हारी मां' यह युवा बोला—"बस यहीं अन्दर ही।" बुढ़िया का उत्तर विनम्र था। युवक बोला—'यदि अन्दर खो गई है तो बाहर क्या मिलेगा तुम्हें ? भीतर की चीज़ भीतर से मिलेगी।' 'किन्तु झोंपड़ी में तो अन्धेरा छा रहा है बेटा ! हाथ को हाथ तो दिखाई नहीं देता। बुढ़िया ने उत्तर दिया—'यदि घर में अन्धेरा है, तो उजाला करो माई ! फिर देखो आप की तकली अभी मिल जायेगी।' 'मैं ने बहुत ढूंढा नहीं मिला' यह बुढ़िया माई बोली। युवक ने एक जलाई दियासलाई तो तकली दहली के पास पड़ी

मिला। 'यह लो अपनी सफला माला।' 'अन्धेरे ने इसे छिपाया था पर प्रकाश ने इस को पा लिया' यह कह कर उस युवक ने अपना रास्ता पकड़ा।

यह तो है एक उदाहरण। ठीक इसी तरह मनुष्य सच्ची शांति का, जिस का स्थान उसका अपना हृदय है, बाहर ढूंढ रहा है, और उस बुढ़िया की तरह अशान्त हो रहा है। उस की अशांति का मूल उसका अज्ञान है। वह सुख, जिस के लिये मारा मारा फिर रहा है हर प्राणी, वास्तव में यह अज्ञानान्धकार की यवनिका के पीछे है उसे उठाने की आवश्यकता है। शांति हमारे पास खड़ी प्रतीक्षा कर रही है। बस अज्ञान घूंघट को हटा दो तो आप के नयन उस के भव्य दर्शन से धन्य हो जायेंगे।

संसार की नश्वरता के और भी अनेकों उदाहरण हमारी आँखों के सामने हैं, मुनिम-एक सेठ ने अपने रहने के लिये एक बनवाया मकान, उस का नाम रखा गया 'अशोक भवन'। कितना सुन्दर है यह नाम! ऊँचा इतना, कि देखने वाले की पगड़ी गिरती है सिर से। आकाश से बातें करता हुआ बिचारे गरीबों के हृदय में आग लगा रहा है। न जाने कितने निर्धनों की जीवन-लताओं को कुचल कुचल कर उस का निर्माण किया गया है! और क्या पता कितने यतीमों की हड्डियों से भरी गई है इस की नींव! इस अशोक भवन के गारे में न मालूम कितने बेकसों का खून डाला गया है! चलो कैसे भी बनाया हो यह भवन, हमें तो उसकी स्थिरता की बात ही तो करनी है।

लो यह भूकम्प आ गया! गगन चुम्बी भवन की दिव्यता सब नष्ट और धराशायी हो गई। उसकी एक एक ईंट का अब धूल बन कर उड़ रहा है। यहां एक मनोहर भवन था जो दर्शकों के मनों को बरबस हरता था, वह आज मिट्टी का ढेर बना हुआ है। उस में अब आकर्षण का नाम भी नहीं, केवल एक मिट्टी का ऊँचा सा टीला, जो जगत की नश्वरता का ढिंढोरा पीट रहा है और मूक भाषा से

कह रहा है कि यह है 'असार संसार' जिसकी हर ईंट ईंट और ईंट के हर कण में अज्ञान घोर छाया हुआ है। किन्तु हा! मोहान्ध प्राणी के नेत्र फिर भी नहीं खुल रहे हैं। वह तो इस पर फिर भी लट्टू हो रहा है, मोह की मदिरा पी कर वे मतवाले हैं वह और उस के नशे में वह अपने आप को भूल गया है। इसी लिये अशान्त और दुःखी है और शान्ति उस से कोसों दूर है।

लीजिये, किसी के घर में आज एक अनमोल पुत्र रत्न का जन्म हुआ है। मां का हृदय-कमल खिल उठा है। मन में नयी नयी आशाओं की झड़ी लग गयी है। ममता का प्याला भर कर बाहर उमड़ रहा है। मां अपने नवजात बालक को स्नेहार्द्र आँखों से निहार रही है बार बार। उस के चन्द्र मुख को बार बार चूमती है मां की दृष्टि, उसका सर्वस्व वह ही है न। बिना उस के देखे उसे चैन नहीं। आँख ओझल हो जाती है, तब वह नजर नहीं आता एक पल के लिये। कितना मोह है मां का अपने प्यारे नन्हे मुन्हे से।

उधर पिता का प्यार क्या कम है? वह भी उसे अपनी आँखों की ज्योति समझता है। मेरे अंधेरे घर का दीपक, अन्धे की लाठी! उस के लिये अपना तन मन धन सब निछावर करता है। किन्तु हा! उधर भाग्य कह रहा है कि अरे पगले क्या समझता है? यह सब आशाएं पानी के बुलबुले की तरह हवा हो जायेंगी। यह दीपक सदा जगता न रहेगा। यह चांद का टुकड़ा एक दिन टुकड़े टुकड़े हो जायेगा। यह पलने में झूलने वाला एक दिन जलती चिता पर चढ़ा होगा। सब इसी तरह काफूर हो जायेगा। यह जीवन की पूंजी लुट जायेगी एक दिन मौत के निर्दय हाथों से। किन्तु कौन सुनता है भाग्य की आवाज!

जब मोह का पर्दा पड़ जाता है तो सत्य बहुत दूर चला जाता है और मनुष्य दुनिया के जाल में रेशम की मकड़ी की तरह फंस जाता है। [illegible]

और बुरे फल उस के लिये बदल लग हा हैं। यह मानक ज गत की दइना पर एक सुगन्धित फूल था कर खिला था और सारे घर को सुगन्धित कर रहा था। मौत के एक हलके से झोके ने उसे नीचे गिरा दिया डाल से और पड़ा है मुरझाया हुआ धरती की छाती पर। मौत की चील उसे उड़ा ले गई। उफ! कितना निठुर है यह मौत। बड़े बड़े राजा के धना इस के आगे घुँ माँग कर गये। इस ने सब को पकड़ गर्दन में और मरोड़ दिया उसे आन की आन में। अनगिनत जीवन इस के भूखे उदर का आहार बन चुके हैं किन्तु इस मौत चिनौती दे रहा है अपने प्रलय काल को। आज जो जन्मा है, किसी दिन वह युवक हो कर विलासिता में खेल खेल कर बुढ़ापे के निकट आ पहुँचता है, और एक दिन उस के निर्दय पंजे में बुरी तरह दब जाता है। झुर्रियों भरा चेहरा, सफेद बाल, लड़खड़ाता अंग, धनुष सी झुकी कमर, पत्ते से कांपते हाथ, मौत का संदेश दे रहे हैं। क्या इस से जगत की नश्वरता नहीं झलकती? यह जन्म मरण का चक्र अनन्त काल से चल रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा। एक वह, जो इस चक्र से बच निकला उसे ही शान्ति मिली और दुख उस का सब उड़ गया कपूर की भान्ति। सच तो यह है कि जगत का हर मंगल वास्तव में अमंगल ही है। अतः यह है असार संसार।

महा मंगल

प्रभु महावीर ने अपनी अमर वाणी में कहा कि—

'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं'

अर्थात धर्म ही उत्कृष्टमंगल है। प्रश्न उठ सकता है कि धर्म ही उत्कृष्ट मंगल क्यों है? उत्तर इस का सरल ही है वह यह, कि धर्म है विशाल मंगल। इस की गोद में शान्ति सदा खेलती है। सदा सुखप्रद है, दुख तो इस के निकट फटकता ही नहीं। इसी लिये तो कहा जाता है कि धर्म का आत्मा का हर सुखाकांक्षी मानव को समझना चाहिये और उसे अपने जीवन के सांचे में ढालने का प्रयत्न करना चाहिये। धर्म जब तक जीवन में नहीं उतरता, जीवन में चमक नहीं आती। जीवन की सोई शक्तियां जागती नहीं। धर्म एक संजीवनी बूटी है जो निष्प्राण शरीर में नया जीवन डालती है या यूँ कहिये कि धर्म ही असली जीवन है इस के बिना जीवन जीवन नहीं, बल्कि मिट्टी का ढेर। इस ढेर का भी कुछ न कुछ मोल तो पड़ेगा ही किन्तु धर्म विहीन जीवन का तो मोल भी नहीं पड़ता, निष्फल जीवन धरती माता के लिये भार बन कर रह जाता है। चलो भार ही बना रहे तो भी संसार का कुछ नहीं बिगड़ता क्योंकि पृथ्वी ने तो अपनी छाती पर एक नहीं अनेकों विशाल पर्वत उठा रखे हैं तो धर्म शून्य जीवन के बोझ से वह दब जायगा क्या? किन्तु दुख तो यह है कि धर्म-विरोधी के मन में दया नाम की कोई चीज नहीं होती। अत्याचार और उपद्रव उसके जीवन का उद्देश्य होता है। उद्दण्डता और उच्छृङ्खलता उस के जन्म जात गुण होते हैं। क्या निर्धन और क्या

धनवान सब उस की अधर्म चक्की में पिस जाते हैं। किसी के मान चित्र पर कालिख पोत देना उस का तो मनोरञ्जन हो है। नारियों के सतीत्व पर छापे मारना और असहाय बालकों का खून अपने सर लेना, उस के लिये एक साधारण सा काम है। मूक पशुओं के धड़ धड़ाधड़ उड़ाने में उन के हाथ कब कांपते हैं भला? ये सब पाप के रंग बिरंगे खेल धर्म के शत्रुओं के हाथों से खेले जाते हैं। आज भी यह पापाचार कम नहीं, मानव-सृष्टि के मस्तक पर दुख की श्यामल घटाएं छा रही हैं। चारों ओर मच गया है एक हाहा कार। त्राहि! त्राहि! की ध्वनियां आ रही हैं हमारे कर्ण-कुहरों में! हा! *कितना अशान्त है यह मानव-समाज! क्या भूतल पर होगा अवतरण* कभी शान्ति देवी का? क्या होगा कभी उस का भव्य दर्शन? क्यों नहीं, अवश्य किन्तु शान्ति के राजपथ पर चलने से। शान्ति का मार्ग है कौन सा? यह भी आप को बताना ही होगा। वह है महा मंगल एक धर्म का मार्ग।

अपने पिछले प्रकरण में आप को बताया जा चुका है कि जगत के भूठे पदार्थों का भूठा ममत्व हमारे दुख का मूल है और संसार में हर ओर हमारी दृष्टि के सम्मुख अशान्ति खड़ी दिखाई देती है और हमारे सुख के गगन पर दुख-बदली छाने में कोई देर नहीं लगती! खरी बात तो यह है कि सच्ची शान्ति का एक मात्र पथ तो 'धर्म' का ही है जिस पर चलने से हमें लौकिक और अलौकिक सुखों का भण्डार मिल सकता है।

आप मेरी बात सुन कर चौंक उठेंगे और कहेंगे "क्या खूब महाराज! आप ने भी खूब कही!" कि "धर्म से हर सुख मिलता है" यह बात आप को एकदम ही भूठी है। आप कहेंगे कि हमारा अनुभव कुछ और कहता है! आप की जिह्वा यह कहे बिना न रहेगी कि हमने हमारी आँखों से धर्म के नाम पर असंख्य अत्याचार देखे हैं। धर्म के नाम पर परस्पर सर फूटते रहे हैं। और एक

दूसरे पर कीचड़ उछालते रहे हैं धर्म के ठेकेदार। सतियों का सतीत्व लुटता रहा है धर्म की आड़ में! घृणा, ईर्ष्या, और पक्षपात इत्यादि भयंकर काले नाग धर्म की ओट में से निकलते रहे हैं। धर्म ने दुनिया में सुख शान्ति की वर्षा तो नहीं की बल्कि वज्र-पात किये जिन्होंने मनुष्य वर्ग का कचूमर निकाल कर रख दिया। भाई भाई में फूट पड़ गई। एक मानव दूसरे मानव से जुदा हो गया! आपस का प्रेम और प्यार सब खो बैठे। धर्म स्थानों की दीवारों ने हमारे मन के अन्दर भी दीवारें खड़ी कर दीं माला के मनके तक बिखर गये! उन की आभा सब नष्ट हो गई। देश के टुकड़े टुकड़े हो गये! विदेशियों ने हमें धर पकड़ा और हजारों वर्षों की दासता का कटु फल उसे भोगना पड़ा! आज भी भारत मां के कलेजे के दो टुकड़े धर्म की छुरी से किये गए हैं। हिन्द और पाक का बटवारा धर्म के खतरे को टालने के लिये ही किया गया है। फिर बताइये कि धर्म को सर्वोत्तम मङ्गल कैसे कहा जाये और इसे सर्व सुखों का आधार कैसे मान लिया जाय भला?

आप की यह बात भी किसी अपेक्षा से तो सत्य ही है किन्तु एक बात आप को भी समझ लेनी चाहिये कि इन सब बुराइयों का उत्तरदायित्व धर्म के कन्धों पर नहीं डाला जा सकता क्योंकि इस सामाजिक वैषम्य का मूल तो अपने अपने मत का अन्धानुराग है जो गुण दोष की परीक्षा नहीं करने देता। अपने दोष और औरों के गुण उस की मलीन दृष्टि में चढ़ ही नहीं सकते। राग द्वेष की इस पैनी कैंची ने ही मानव समाज के टुकड़े किये हैं। यह पक्षपात मनुष्य की दृष्टि को छोटा बनाता है। जिस से 'धर्म' जैसे विराट तत्त्व को देखा नहीं जाता। मत तो मति की उपज ही है और धर्म है सत्य का दूसरा नाम। मति तो सब की भिन्न ही होती है इस लिये मत मतान्तर भी परस्पर भिन्न ही पाये जाते हैं। धर्म को मत के पिंजरे में बाँध कर हम ने धर्म जैसे सार्वभौम सत्य को [illegible]

हमारा अलग अलग धर्म हो गया और उस पर अपने मत की हम ने लगा दी मुहर! वह सीमित हो गया किसी एक विशेष मनुष्य समुदाय के लिये और उस का नाम पड़ गया "सम्प्रदाय"! वह शब्द हमें बड़ा प्यारा लगा और इस के ममत्व ने हमें सत्य से दूर ले जा कर पटक दिया और हम साम्प्रदायिकता की तंग गलियों में चक्कर काटने लगे। और सत्य का राज पथ हम से ओझल सा हो गया। जब भी किसी ने किसी के मत पर आक्षेप किया कि बस बह गयीं वहां पर खून की नदियां! हम टूट पड़े एक दूसरे पर राक्षस से बन कर और अनेक लुभावनी और जलती तसवीरों को आन की आन में दूर कर दिया इस मत के झूठे मोह में आकर! प्राय देखा गया है कि मनुष्य अपने मत का रागी बना हुआ दूसरे के सत्यांश का अपलाप करता है और उस के मिथ्यांश को पकड़ कर उसे संसार की दृष्टि में गिराने का प्रयास करता है। इस तरह हमारी दुनिया में लड़ाई झगड़े क्लेश और कई प्रकार के उपद्रव खड़े हुये, जिन्हों ने हमारी समाज को जड़ों से हिला दिया। हम अपने में खोखले हो गये और तभी हमें विदेशियों के हाथ की कठ पुतली बनना पड़ा। यदि देखा जाये मत तो एक दौड़ है जो सत्य को खोजने के लिये लगाई जाती है। सत्य पूर्ण है इस लिये धर्म पूर्ण है मत सदा अपूर्ण है। अपूर्ण से हम पूर्ण को कैसे समझ सकते हैं भला। निस्सीम ससीम में कैसे समा सकता है भला। अनन्त सान्त के घर में कैसे आ सकता है जी! अढ़ाई अंगुल के बुद्धि के फीते से सत्य की अनन्तता को कौन नाप सकता है भला? हां, हर एक मत में कुछ न कुछ सत्य अवश्य है हमें उस के सत्यांश का भी आदर करना चाहिये और उसे अपने सत्य में मिला कर दुगुना बना लेना चाहिये। हर मत के दृष्टिकोण को समझना हमारा कर्तव्य प्रथम है, तभी हम धीरे धीरे सत्य के समीप पहुँच सकेंगे। दिवाकर के आने पर अन्धकार स्वतः भाग उठता है। ठीक सत्य के सामने सब कुत्सित भावनाएँ

और द्वन्द्व निश्शेष हो जाते हैं। विश्व बन्धुत्व की विचारणा जाग्रत होती है। और सारा समाज एक प्रेम की डोरा में पिरोया जाता है। स्वर्ग भूतल पर आ जायेगा। सत्य के पाने के लिये मध्यस्थ भावना परमावश्यक है विभिन्न दृष्टि बिन्दुओं का समन्वय करना होगा। दृष्टि भेद से सत्य भेद नहीं होता। सत्य तो एकही है वह नित्य अखण्ड और अविनाशी है

इस उक्ति की पुष्टि में नीचे एक छोटा सा उदाहरण दिया जाता है।

एक था नगर बड़ा सुन्दर। वैभव और ऐश्वर्य खेलता था उस की गोद में। बड़े लम्बे चौड़े रौनक भरे बाज़ार थे उस के। उस के एक चौराहे में एक बुत खड़ा था किसी नेता का, जो विलक्षण ढंग का बना हुआ था। उस के सामने का भाग था चान्दी का और पिछला भाग था उस का सोने का। इस तरह वह चान्दी सोने का मिला जुला पाषाण चित्र हर राही के मन को बरबस मोहता था। कभी एक पुरुष सामने से निकला और उस बुत को देख कर सहसा बोल उठा वाह। 'कितना मनोहर है यह बुत। कला स्वयं सजीव हो कर मानों सामने खड़ी हो।' उस ने प्रशंसा की और आगे निकल गया। इतने में एक दूसरा राही गुजरा पीछे की ओर से, उस की नजर भी उस खड़े बुत पर पड़ी और बोल उठा अजी वाह क्या कहने। कलाकार ने तो अपनी कला में कमाल कर दिया। देखो ना कितना आकर्षक है यह सोने का बुत' उस ने भी प्रशंसा के दो चार फूल झाड़े और आगे चल दिया। कभी दोनों को इकट्ठे होने का सौभाग्य मिला बात चीत में बात उस बुत की चल पड़ी। एक बोला 'कहो यार आप ने उस चान्दी के बुत को देखा जो चौराहे में खड़ा किया गया है। अजी वह तो सोने का है सोने का। आप ने उस पर पूरी निगाह डाली होगी। "चुप रहो जी ज्यादा बक बक न करो। चान्दी के बुत को सोने का बताते हो। बड़े आप

है आँखों वाले बन कर।" दूसरे ने उस पर भाड़ डाल दी। तीसरा मित्र पास ही खड़ा था उस ने कहा। "तुम लड़ो मत, घटना स्थल पर पहुँचने से सब निर्णय हो जायेगा। दोनों उस की बात पर सहमत हो गये और उधर को ही उठ कर चल दिये। वृक्ष के निकट जाते ही एक ने दूसरे का आगे धकेला और कहा 'कि देख आँखें खोल कर, है चान्दी का कि नहीं? दूसरे ने उसे पीछे खींचा और बोला "देख ध्यान से, है सोने का कि नहीं" दोनों लज्जा के मारे पानी पानी हो गये और आखिर उन्हें एक दूसरे की बात का समर्थन करना पड़ा। और अपने अपने पक्ष का झूठा हठ उन के मन से पंख लगा कर उड़ गया। सत्य उन के सामने आ कर झलकने लगा। दृष्टि भेद से सत्य में भेद नहीं होता। सत्य एक ही है और मत अनेक हैं। सत्य अनादि और अनन्त है और मत बन बन कर बिगड़ जाया करते हैं। मतों की अनेकता में सत्य की एकता खोजना चाहिये।

एक ही पृथ्वी पर कितने प्रकार के भवन खड़े हैं कोई छोटा और कोई बड़ा, कोई सुन्दर तो कोई असुन्दर किन्तु जिस धरती के वक्षस्थल पर वह शान से खड़े हैं वह तो एक ही है न। उस पर बने घर अनेक हैं, और देखो, वह मकान आगे और छोटे छोटे भागों में बंट जाता है। जिनको कमरे कहा जाता है यदि इन सब अलग अलग कमरों की दीवारें हटा दी जाएं तो एक ही चार दिवारी ही शेष रहेगी। यदि वह भी गिरा दी जायें तो ऐसा समतल भूमि रह जायेगा जिस का आर पार कहीं नजर नहीं आएगा। ठीक इस तरह मत मतान्तरों की भित्तियों ने अनन्त सत्य को छोटे छोटे टुकड़ों में बांट दिया है। जब तक इन दीवारों का मोह न टूटेगा तब तक अखण्ड सत्य का विराट भूमि पर हमारी दृष्टि न जा सकेगा। सत्य जैसे महान तत्त्व को किसी सम्प्रदाय के पिंजरे में बांधा नहीं जा सकता। छोटे हृदय मनुष्य इस के मङ्गल दर्शनों से तो सदा वंचित ही रहेंगे।

देखिये! एक वृक्ष हमारे सामने खड़ा है। उसकी विभिन्न डालियां झुक झुकी हुई पवन के झूले में झूल रही हैं। उस का एक एक फल अपने रस में झूलता रहा है और उसका एक एक पत्ता अपनी हरयाली पर इठला रहा है। उस वृक्ष के फल, पत्ते और टहनियां भले ही अलग हों किन्तु उन सब का जीवन-आश्रय तो एक मूल ही है न। इस भांति सब मतों का आधार सत्य एक ही है।

भूत, भविष्यत् और वर्तमान का एक ही पथ में नापने वाला धर्म (सत्य) एक विराट पुरुष है। सामाजिकता साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीयता आदि धागों से धर्म (सत्य) को बांधा नहीं जा सकता। इसका सारा सम्बन्ध आत्मा के साथ है और इसे किसी तरह भी आत्मा से अलग नहीं किया जा सकता। आत्मा और धर्म का प्यार अनादि है और इसी तरह बना रहेगा सदा के लिये। लीजिये एक उदाहरण।

शरीर सब के अपने अपने हैं और भिन्न भिन्न हैं किन्तु आत्मा तो एक ही है। आप कहेंगे कि नहीं, आत्मा भी पृथक पृथक ही है, एक नहीं। किन्तु मेरा अभिप्राय "जीवस्य उपयोग लक्षण" से है क्योंकि ज्ञान और दर्शन हर आत्मा का गुण है जिस से अनेकों आत्माएं एकता की माला में पिरोई हुई हैं। हम शरीर को काट सकते हैं किन्तु आत्मा को कौन तलवार काटेगी भला? कोई नहीं। उस को तो उस की प्रखर धारा छू भी नहीं सकती। आग शरीर को जला कर भस्म बना देती है किन्तु आत्मा उस की लपेट में नहीं लिपट सकता। बस! मत बन बन कर नाश होते रहेंगे किन्तु सत्य आत्मा की भान्ति अपनी अखण्डता की पताका फहराता रहेगा।

शीतलता जल का अपना स्वभाव है। अग्नि के सम्पर्क से भले ही उस में उबाल आ जाए और वह कुछ समय ऊपर से जलता रहे और उसे छूने से हो सकता है कि हाथ का फूंक भी दे किन्तु यदि वह ही गरमागरम पानी की पतीली उठा कर जलती आग के सिर

उठता है तो वह हिंसा के भावों से घायल हुए बिना नहीं रहता। शरीर से की गई हिंसा द्रव्य हिंसा है और मन से की हुई हिंसा भाव हिंसा कही जाती है। बहुधा द्रव्य हिंसा भाव हिंसा से जन्मती है और भाव हिंसा बेगवती हो कर द्रव्य हिंसा की ओर बढ़ती है किन्तु कभी कभी हमारी वाणी और शरीर से किसी को कष्ट पहुंच रहा होता है और उधर उस के प्रति कुशल भाव भरे रहते हैं। देखिये—

मां का एक है बालक। सारा दिन खेलता रहता है। न पढ़ता है न लिखता है। घर में आते ही घर को सर पर उठा लेता है। कभी मां से लड़ता है तो कभी अपनी दादी को दो चार लातें मार जाता है, यदि उस को पैसे न मिलें तो। घर से निकलते ही दो चार लड़ाइयां मोल ले कर आता है। घर की चीजें चुरा कर ले जाता है पूछने पर झूठ बोलता है। मां समझाती है किन्तु उस से मन नहीं होता। शिक्षा का उस पर वह ही फल है जो चिकने घड़े पर नीर बिन्दु पर होता है। मां का प्यार उस के चरित्र के लिये तलवार बनता जा रहा है। एक दिन उस का बापू उस को पकड़ कर पीट देता है। बच्चा कहता है 'मेरा पिता बड़ा कठोर है जो मुझे बुरी तरह मार रहा है' किन्तु उसे विवश हो कर ऐसा करना पड़ा है। सिवाय इस के और उपाय भी क्या था? क्या उस के जीवन उपवन को यूँ ही प्यार दुलारों में वीरान कर दिया जाता? तो फिर बड़ी भारी दया हो जाती क्या? नहीं, वह दया न होती बल्कि दया की हत्या होती! याद रखिये, दया के मोह में आ कर अपने कर्त्तव्य को भुलाया नहीं जा सकता। जो दया की आड़ लेकर कर्त्तव्य विमुख होते हैं उन की दया जन-जगत् के लिये विनाश कारी हुआ करती है। पिता की मार उस के लिये सुधार बन गई। विशुद्ध आदर्श अहिंसा की दृष्टि से भले ही उसे हिंसा कहा जाए किन्तु व्यवहारिक दृष्टि कोण उसे श्रावक धर्म की सीमा से बाहर नहीं जाने देगा। कोरा आदर्श हवा में उड़ सकता है, धरती पर नहीं

चन सकता। आदर्श वीतराग पुरुषों का भूषण होता है जो समाज के बन्धनों से सर्वथा मुक्त होते हैं और वीतरागता के सिवाय जिन का और कोई लक्ष्य और कर्त्तव्य ही नहीं होता। निम्न उदाहरण द्रव्य और भाव हिंसा को स्पष्ट करने में सफल हो सकता है —

एक था भिक्षु। नगरों से दूर उस ने एक बना रखी थी अपनी कुटिया। उस शान्त और एकान्त कुटि में प्रभु चिन्तन चलता रहता, जो आत्मा का सच्चा व्यायाम है। आज कल लोग व्यर्थ की बातों में जीवन के अनमोल क्षण गंवाया करते हैं यदि वे ही क्षण प्रभु चिन्तन में अर्पण किये जाएँ तो जीवन उन्नति के शिखरों पर पहुंच जाये किन्तु आज आध्यात्मिक चिन्तन का स्थान विषय चिन्तन ने ले लिया है, जिस से जनता का जीवन गिर रहा है पतन की खाइयों में। वह सन्त अपने स्वाध्याय ध्यान और भजन में मस्त रहता था सदा ही। एक अलौकिक ओज झलकता था उस के मुख मण्डल पर और सौन्दर्य की रश्मियां फूट फूट कर निकल रही थीं उस के रोम रोम से। उस की मोहिनी मूर्ति देख कर हर दर्शक का मन मुग्ध होता जाता था। वह प्रतिदिन भिक्षा के लिये नगर की गलियां नापा करता। रूखा सूखा भोजन जैसा कैसा भी होता खा कर प्रसन्न रहता। जो बच जाता वह उसे फिर भूख लगने पर खा लेता। इस तरह उस के क्षण निकल रहे थे शान्ति और सुख से। गली में घूमते हुए वह गाया करता था कि —

दयावान को स्वर्ग मिलेगा
नास्तिक नरक द्वार।
दया दान और दमन बिना
सब मिथ्या है संसार॥

उस नगर की एक गली में एक नास्तिक का घर था उस की श्रद्धा किसी महात्मा पर न थी। वह सन्तों की खिल्ली उड़ाया करता। उस

भिक्षु को वह ढोंगी कहा करता और खूब दिल भर कर दिन में सौ बार उस को कोस लिया करता। किंतु उस की स्त्री बड़ी सुशील थी। धर्म-कर्म में सब से आगे रहती, यहां दान पुण्य का काम होता, वह वह धर भाग लेती। सत्संग को आत्मा का स्नान समझती। पूजा पाठ उस के दैनिक कार्य क्रम का मुख्य अंग था। कोई भिखारी उस के घर से खाली न जाता।

एक दिन वह भिक्षु अपना राग अलापता हुआ उसी गली से गुजरा और उस के घर के सामने आ कर खड़ा हो गया। उस ने जब देखा तो झट अच्छा अच्छा भोजन उसे ला कर दे दिया और वह ले कर चलता बना। नास्तिक बिचारा दान्त पीसता रह गया। और कड़क कर बोला—इस तरह घर कितने दिन चलेगा। क्या इस हट्टे कट्टे के लिए इतना परिश्रम करता हूँ मैं? ये तो खाऊ हैं खाऊ। दुनिया को स्वर्ग का लाभ और नरक का भय दिखा कर ठगते हैं फिरते हैं यह तो।'

'जो हुआ सो हुआ, आगे के लिये एक टुकड़ा भी रोटी का दिया तो तेरी खैर नहीं, यह समझ ले तू।' किंतु उसे यह शिक्षा कब भाता था। उस ने एक न सुनी और अपने पुण्य-दान में निरंतर लगी रही।

नास्तिक ने सोचा 'यह तो मानती नहीं और सारा घर इन भूखे नगों के हाथों लुटाया जा रहा है। 'यदि किया जाए तो क्या किया जाए' आखिर उस की उलटी बुद्धि में एक उलटी ही बात आ गई उसने कहा क्यों न इस भिक्षु का ही समाप्त कर दिया जाये। जब तक यह रहेगा इस को फरी तो समाप्त हो न होगी। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। उसका मन बुरा करने पर सहमत हो गया।

एक दिन वह शान्त और सरल हृदय भिक्षु भिक्षाटन के लिये उसी गली में आया तो उस के गायन की आवाज आते ही नास्तिक झट

घर से निकला और उस महात्मा के पेट में अपना खंजर घोप दिया, वह गिर पड़ा और सिसकने लगा। किन्तु उस ने अपने मन में बैर-द्वेष का मैल न आने दो। समता के उपवन की सैर करता हुआ वह अपने शरीर से निकल गया। यह है अखण्ड और आदर्श अहिंसा जिस का मंदिर श्रमण भिक्षु के तप पर पाया जाता है। यह नास्तिक है हिंसा का मूर्ति, इन्हें ही लोगों संसार में उपद्रव और अशान्ति की चिनगारियां उछाला करते हैं। उस की सुशील स्त्री ने जब देखा तो हाय कर के रह गई। मनो सारी चकित सी रह गई। उस भक्त नारी की आँखें भर गईं और वह करुणा जल बरसाने लगी। ऐसे होते हैं न्याय की तलवार सदृढ़रूप। वह घातक पकड़ा गया और राजा ने उस दोषी समझा और उसे मृत्यु दण्ड दिया गया। एक दिन उस को शूली पर चढ़ा दिया गया। मानों उस की नास्तिकता का अन्त हो गया। राजा ने अपने कर्त्तव्य का पालन कर दिया। यह दण्ड न्याय पूर्ण है या नहीं यह निर्णय आप करें किन्तु एक बात आप याद रखिये कि अहिंसा और न्याय का सूर्य और किरण का सम्बन्ध है। मार दिना द्रव्य हिंसा से बलवती होता है।

अहिंसक अपने अधिकारों पर सन्तुष्ट रहता है दूसरों की ओर ललचाई हुई आँखें नहीं रखता वह दूसरे के अधिकारों को कभी लूटता नहीं, हर मा बहिन का मान उसके हाथों में सुरक्षित रहता है। दूसरे की रक्षा के लिये सच्चा अहिंसक कभी कभी अपने जीवन पर खेल जाता है।

हिन्सा से विश्व में शान्ति कभी हो नहीं सकती। अहिंसा ही, सच पूछो तो शान्ति की जननी है, अहिंसा के राज पथ पर चल कर ही संसार सुख से जा सकता है। अहिंसक उदार होता है। उसका अपनत्व परिवार तक सीमित नहीं बल्कि संसार तक होता है। उसे हर जगह अपना आप दीखता है। राग और द्वेष के संकीर्ण घेरे से निकल कर प्रेम के महा मार्ग पर आ जाता है वह। यहां आकर उसका स्वार्थ

निश्शेष हो जाता है और धीरे धीरे उसका यह विश्वव्यापी 'स्व' अनन्त में मिलकर अनन्त रूप हो जाता है।

अहिंसा किसी मन्दिर में नहीं रहती। दुखी का हृदय ही उस का सच्चा मन्दिर है। आप के सामने कोई भूखा मर रहा है। किसी मां के नन्हें मुन्हे दूध के लिये बिलबिला रहे हैं। यदि आप सच्चे अहिंसा के पुजारी हैं तो उन के दुख निवृत्ति के लिये आप अपने हर सुख का बलिदान कर देंगे।

अहिंसा ने ही संसार को 'जाओ और जाने दो' का पाठ पढ़ाया जिसके सिवाय विश्वरक्षा का कोई दूसरा उपाय नहीं।

अहिंसा आत्मा का निज गुण है, क्योंकि विश्व के हिंसक प्राणी में अपने जीवन के सुख शान्ति की एक उभरती हुई कामना मिलेगी आपको। भला क्यों? इसलिये कि सुख आत्मा का निज गुण है। ठीक है, जब सुख आत्मा का निज गुण है तो क्या 'जीओ और जाने दो' या 'सुख से रहो और सुख से रहने दो' की शिक्षा की ज्योत जगाने वाला 'अहिंसा सिद्धान्त' आत्मा का निज गुण (स्वभाव) नहीं हो सकता? अवश्य हो सकता है। इस लिये आत्म धर्म या मानव धर्म प्राणी मात्र का अपना धर्म है। इस को जैनों अथवा बौद्धों का धर्म कहना तो भूल ही है। इस के बिना तो मनुष्य जी ही नहीं सकता। अहिंसा का विकास ही चरित्र का विकास है और चरित्र की पूर्णता ही अहिंसा का आदर्श है। अहिंसा आत्मा का स्वभाव है और स्वभाव को ही धर्म कहा जाता है अतः अहिंसा आत्मा का धर्म है। इस का अनुसरण ही हमारे चिरन्तन सुख का साधना है।

संयम

मैं ने अपनी पुस्तक की पिछली पंक्तियों में आप को बताया कि सत्य का ही दूसरा नाम धर्म है। धर्म यदि एक वृक्ष है तो अहिंसा उस का मूल है संयम और तप उस की दो शाखाएं हैं जिस को मोक्ष का फल लगता है और आनन्द का पकता है उस में रस। कोई विरला ही इस रस का पान करता है। संयम और तप के बिना अहिंसा की रक्षा नहीं हो सकती क्योंकि असंयमित मन, वाणी और इन्द्रियां उन्मत्त हो कर चंचल हो जाती हैं। यह चंचलता धीरे धीरे उच्छृंखलता बन कर दुष्प्रवृत्तियों को जन्म देती है जिस से जीवन विषमय बनता है। अहिंसा यदि खेत हरा भरा है, तो कहना चाहिये कि संयम और तप उस खेत की पाल है जिस के बिना खेती सुरक्षित रह नहीं सकता।

भगवान महावीर स्वयं कह रहे हैं कि आत्मा का दमन करना चाहिये। आत्म दमन एक कठिन कार्य है। जो आत्म विजय की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया वह अखिलेश की उपाधि से विभूषित हो गया समझो। अब आत्म दमन कैसे हो? इस के उत्तर में प्रभुवार की उक्ति भूलनी नहीं चाहिये कि—

> वर मे अप्पा दन्तो
> संयमेण तवेण य

आत्म दमन का यही कुञ्जी है।

अब एक प्रश्न और उठ सकता है कि एक ओर तो कहा जाता है कि आत्मा का विकास करो और दूसरी ओर हमारे कथा कुहरों

में आत्म दमन की ध्वनि सुनाई दे रही है। विकास और दमन दोनों परस्पर विरोधी हैं। जिसका विकास करना है उसका दमन कैसे हो सकेगा? और जिस का दमन किया जाएगा उस का विकास कैसे होगा भला? इस पहेली को जरा समझ लेना चाहिये।

आप को पता है कि जैन धर्म एक स्याद्वादी धर्म है। अपेक्षा वाद इस के दर्शन की आधार शिला है इसलिये अपना सिद्धान्त की दृष्टि से आत्माएं आठ हैं। इन्हें केवल योग आत्मा और कषाय आत्मा का ही दमन करना है, जिस से चरित्र आत्मा दर्शन आत्मा और ज्ञान आत्मा का तो स्वत ही विकास हो जायेगा इसलिये तो संयम और तप की आवश्यकता है। इसी से योग और कषाय का निरोध होगा, तभी अहिंसा का पालन सुचारु रूप से हो सकेगा और समता भी तभी मन के रंग मंच पर खड़ी हो सकेगी और कर्म की यवनिका उठते ही दर्शन और ज्ञान की भव्य वृत्तियां प्रकट होंगी।

मुक्ति हर मन का सर्वोत्तम साध्य है। चाहे वह स्थायी हो या अस्थायी। मुक्ति के संवरण के लिये मन, वाणी और शरीर का निरोध करना होगा। निरोध की भूमि है एकाग्रता, वह एकाग्रता संयम का ही मधुर फल है। इस एकाग्रता का अर्जन कोई बच्चों का खेल नहीं। यह एक महान कार्य है और मन वाणी और काया की कुत्सित प्रवृत्तियों को रोके बिना और श्रेष्ठ प्रवृत्तियों को अपनाये बिना नहीं हो सकता। यह संयम आध्यात्मिक विकास के लिये तो आवश्यक है ही किन्तु लौकिक उन्नति के लिये भी इस का नितान्त आवश्यकता है। इसके बिना जीवन निरा दुखों का घर है। मनुष्य ने अपनी मोहान्धता से ही इन्द्रियों की चपलता में सुख मान रखा है। संयम हीन जीवन शक्तिहीन जीवन है। संसार में प्रायः वे ही लोग दुखी हैं जो वासना की दासता से जकड़े हुए हैं और जिन का मन वाणी और शरीर अपने वश में नहीं।

संयम की भी तीन धाराएं हैं जो मन लोक वचन लोक और

शरीर लोक में बहती है। सर्वप्रथम हम मन के संयम पर कुछ प्रकाश की किरणें डालेंगे जिस से इसका विशुद्ध स्वरूप आप के मस्तिष्क में उतर सके।

मन

मन स्वभाव से ही चंचल है। सदा कुछ न कुछ उधेड़ बुन किया ही करता है। अभी किसी की हित-चिन्तना कर रहा है तो अभी उसी का अहित चाहने लग गया है। अब कभी किसी का उद्धारक है तो कभी किसी का विनाशक। कभी भावनामृत के महासागर में शांत बैठा है तो कभी तृष्णा के महाकाश में उड़ने लगता है। हा! कितना चंचल है यह मन। कहीं भी विश्रान्ति नहीं। तभी तो

चंचलं हि मनः कृष्ण

कहा है। यही मन का असंयम है जो सब दुःखों और क्लेशों की जड़ है।

लोक प्रायः कहा करते हैं कि यह मन तो वश में ही नहीं होता। करें क्या? बहुत पूजा पाठ किया, किन्तु मन की वह ही बेढंगी चाल जो कि पहले थी। वह ही ढाक के तीन पात।

यदि मन का निग्रह न हो सकता होता तो हमारे महापुरुष इस के वशीकरण का कभी उपदेश ही न करते। यदि मैं आप से कहूँ कि मेरे लिये आकाश के फूल, शशक के सींग लाओ और पानी से मक्खन निकाल कर खिलाओ तो आप कहेंगे कि आप की ये सब बातें अनर्गल हैं और प्रलाप मात्र हैं क्योंकि ये सब असम्भव हैं।

महान आत्माएं असम्भव का आदेश या उपदेश नहीं करतीं। उन्हों ने मन का संयमन करने का अपने प्रवचन में संकेत किया है तो यह बात सिद्ध होती है कि मन का संयम हो सकता है और उन वीर आत्माओं ने स्वयं किया भी है किन्तु उस के लिये उचित और सम्यक् प्रयत्न की आवश्यकता है।

आप अपना मन अपने हाथ में रखना चाहते हैं, श्रेष्ठ कामना है आप की। किंतु यह भी बता दीजिये कि इस के लिये प्रयत्न कितना करते हैं आप। आप सत्संगियों की पंक्ति में क्या कभी जा कर बैठे हैं? यदि बैठे हैं तो कितनी देर? और उधर रस और रंग की दुनिया में आप विचरते तो नहीं? यदि घूमते हैं तो कितनी देर? दोनों की तुलना करनी होगी आप को, जिस का पलड़ा भारी होगा उसी के वश में रहेगा यह मन। आप देखेंगे कि इस जीवन की अधिकांश घड़ियां वासना के पलने पर गुज़रती हैं और केवल दो चार क्षण ही सत्संग और स्वाध्याय आदि में लग कर सफल होते होंगे। ऐसी दशा में मन अपने आप में कैसे रह सकता है भला? इस के लिये इन्हें एक लम्बी साधना करनी होगी। अपने अन्दर सुन्दर संस्कार भरने होंगे। वासनाओं से लड़ना होगा और विकारों पर विजय पानी होगी। जिस को दूसरे शब्दों में संयम कहा जाता है।

आप कहते हैं कि पूजा पाठ और सामायिक आदि में भी मन चुप नहीं बैठता। कुछ न कुछ गुण गुणाता रहता है सदा ही। प्रयत्न करने पर भी हाथ से निकलता जाता है। इस पर यदि आप विचार करें तो पता चलेगा कि एक नहीं, अनेकों कामनाओं ने आपने मन को घेरा हुआ है। हर वासना खूब प्रबल है, मन को अपनी ओर घसीटे लिये जा रही है। आप अपनी ओर खींच कर भक्ति में उसे लगाना चाहते हैं। किंतु आप की चरित्र तथा ज्ञान शक्ति होती है निर्बल और उधर कामना शक्ति होती है सबल और वह बरबस मन को भगा ले जाती है और आप को उस के सामने घुटने टेकने पड़ते हैं। मन हमारे काबू से बाहर हो जाता है। हम लड़खड़ा जाते हैं और अपने आप को असफल समझ कर हताश हो कर बैठ जाते हैं। अपने अभ्यास को छोड़ कर आलस्य में पड़ कर आँसू बहाते रहते हैं।

अभ्यास से पहले कुछ वैराग्य का रंग भी तो मन पर चढ़ना चाहिये। तभी तो गीता में कृष्ण भगवान ने कहा

अभ्यासेन च कौन्तेय ।
वैराग्येण च गृह्यते ।

वैराग्य के सम्मुख आसक्ति नहीं ठहर सकती। अनासक्त मन किसी व्यर्थ सकल्प विकल्प का ताना-बाना नहीं बुनता। वह शान्त रह कर अपने भजन अथवा ध्यान में लगा रहेगा जिस से मन धीरे धीरे अपने आप को निराश करके मुक्ति के पास पहुंच जाता है।

वैराग्य के बिना कोई साधना पूरी नहीं होती।

जैसे कोई भी भवन नींव के बिना खड़ा नहीं रह सकता ठीक इसी तरह वैराग्य के बिना संयम का महल सुरक्षित नहीं रह सकता।

वैराग्य कोई खेल नहीं। यह अन्तर में जागी हुई आत्मा की अमर विभूति है, यह उस का वह जीवन रस है जिस में वह सदा आनन्द में झूमा करता है जिस के सामने सोना और मिट्टी एक समान हो जाते हैं। राजा और रंक को देख कर जिस का मन ऊँचा-नीचा नहीं होता। जिस के सम्मुख संसार के समग्र वैभव कोई मोल ही नहीं रखते। जीवन का राग और मृत्यु का भय जिस को कभी सताता नहीं। सच्चा वैराग्य तो अन्तर में उस का जीवन धन है। वैराग्य और संयम की कुठारी से कर्मों के ताले तोड़ कर आत्मा की तिजोरी को खोला जाता है। यह वैराग्य सच्चा होता है और अन्तरात्मा की गहराइयों से उठता है इस का बाज रोग, शोक, दुःख और दरिद्रता आदि बाहर नहीं रहते बल्कि इस का बीज है ज्ञान और वह रहता है आत्मा में। ज्ञान का उदय होते ही मिथ्यात्व का अन्धकार उठने लगता है। सत्यासत्य और नित्यानित्य का समझने में कुछ देर नहीं लगती। मनुष्य नश्वर सुखों को असार समझने

लगता है जिस से विश्व के अखिल मन मोहक पदार्थों की आसक्ति जाती रहती है और उस अनासक्ति के गर्भ से वैराग्य का जन्म होता है फिर उस का सहोदर संयम उत्पन्न होता है। वैराग्य और संयम मिल कर कर्मों को पछाड़ कर आत्मा को मुक्त कराने में सफल हो जाते हैं। ज्ञान गर्भित वैराग्य ही सच्चा वैराग्य है—एक उदाहरण लीजिये—

आप के सामने एक थाल परोसा गया है। बड़ा लुभावना है यह खाना आप के मुँह में पानी भरता जा रहा है देख देख कर। खाने के लिये आप लालायित हो रहे हैं। हाथ आप का आगे बढ़ रहा है। इतने में आप क्या देखते हैं कि एक नौकर दौड़ा आता है और चिल्लाता आ रहा है कि भोजन मत खाओ, मत खाओ। आप सोचते हैं कि इतना बढ़िया खाना है और यह कह रहा है 'मत खाओ' 'अरे क्या बात है?' अजी व्यञ्जन की देगची में से मरा साप निकला है, साप। आप ने भोजन वहीं छोड़ दिया और मारे घृणा के उठ खड़े हुए, अब आप का मन उस भोजन को देखना भी नहीं चाहता। ऐसा क्यों? इसी लिये कि पहले आप को साप की विष का ज्ञान न था। इस लिये आप देख देख कर फूले नहीं समाते थे और उसे पेट में उंडेलने के लिये मुँह बा रहे थे। अब आप को मरे साप का ज्ञान हो गया है अतः आप अब नाक सिकोड़ते हैं और उसे फूटी आँख देखना नहीं चाहते।

ठीक इसी तरह दुनिया के भोगों में मनुष्य तभी तक रचा-पचा रहता है जब तक उस का ज्ञान न हो और यह बोध न जाग पड़े कि भोगों की पिटारी में दुख, शोक चिंता और मृत्यु के काले नाग छिपे हुए हैं और अनादि काल से इन के डंकों से संपीड़ित होते आ रहे हैं हम। ज्ञान होते ही वह वासना की पिटारी फैंक देता है और सच्चे वैराग्य की ज्योति ले कर अपने जीवन को ज्योतिर्मय बना कर धन्य होता है।

ज्ञान मिलता है सत्संग और स्वाध्याय से। सत्संग में हर मनुष्य, शिक्षित हो या अशिक्षित, अपना आँचल भक्ति ज्ञान के मोतियों से भर सकता है। बहुत से वृद्ध अपना समय कुसंग में खोते रहते हैं, किन्तु सत्संग में आने से डरते हैं जैसे कि सत्संग कोई छूत का रोग हो। व्यर्थ की गप शप बड़ी अच्छी लगती है इन को, किन्तु ज्ञान की बातें सुनने से मन न जाने इतना क्यों घबराता है।

कोई ताश और शतरंज पर आ बैठा तो सारी रात गुज़र जायेगी किन्तु क्या मजाल कि खिलाड़ि का मन ऊब जाए। कोई बैठा हुक्का पी रहा है, कोई चाय पर डटा हुआ है तो कोई बाप की कमाई धूएँ में उड़ा रहा है। कोई सिनेमा की ओर दौड़ा जा रहा है तो कोई घर में ही रेडियो पर गीतों का प्रोग्राम सुन रहा है किन्तु सत्संग का नाम सुनते ही मूर्छा आ जाती है। फिर कहा जाता है अजी क्या रखा है क्या सत्संग में। जो उपदेश सुनते हैं उन्हों ने क्या बना लिया है? सत्संग से क्या लाभ, यदि मन शुद्ध न हो। देखा है मैं ने अमुक भक्त को जाते हैं कथा सुनने स्थानक में और मन्दिर में, और काटते हैं लोगों की गाँठें दुकानों पर। ऐसे भक्तों से तो हम सत्संग से परे ही अच्छे जो दूसरों के गले तो नहीं काटते फिरते। सब से पहले तो अपना मन शुद्ध होना चाहिए तभी सत्संग में लाभ है। किन्तु ऐसे लोगों से पूछना चाहिये कि मन शुद्ध कैसे होगा? घर बैठे बैठे ही आप शुद्धि के शिखर पर जा चढ़ेंगे क्या? मुझे एक छोटी सी बात की स्मृति आ गई है और उसे लिखे ही देता हूँ यहां। एक मनुष्य तैरने की कला सीखना चाहता था। वह एक नदी पर गया और नदी में उतर गया, लगा गोते पर गोते खाने। घबरा कर बाहर आ कर किनारे पर खड़ा हो गया और कहने लगा कि जब तक मैं तैरना न सीख लूंगा तब तक जल पर पैर भी न रखूँगा। अजी बताइये कि तैरना कहां सीखोगे भला? क्या

पृथ्वी पर * टक यहा हाल मेरे उन भाइयों का है जो मन शुद्ध होने के इच्छ सत्संग में जाना चाहते हैं।

स्वाध्याय भी आत्मा का एक व्यायाम है जिस से न केवल बुद्धि ही शक्तिशालिनी बनती है वरन् आत्मा भी परिपुष्ट होता है। सूर्य जैसे कमल को पखुड़ियें खोल देता है ऐसे स्वाध्याय से आत्मा खिल उठता है। सूत्र उत्तराध्ययन में प्रभु गौतम ने भगवान वीर के चरणों में एक प्रश्न भी उपस्थित किया है, देव! स्वाध्याय में क्या लाभ? भगवान ने पीयूष वर्षाया कि, शिष्य। स्वाध्याय ज्ञान के आवरण को उठाता है। और जीवन में सद् ज्ञान का प्रकाश बिखेर कर उसे एक आदर्श बना देता है। किन्तु आज तो युग ही पलट गया है। हर छायाचित्र नावल का शौकीन हो गया है, मानो नावल उन का धर्म ग्रन्थ हो। प्रेमी और प्रेमिका का प्रेम वर्णन पढ़ने में बड़ा आनन्द लता है किन्तु ज्ञान के भरे महापुरुषों के उपदेश उन को नहीं भाते, धर्म पुस्तकें अलमारियों में पड़ी सड़ रही हैं और कीड़ों का आहार बन रही हैं, कोई उन की देख भाल करने वाला भी नजर नहीं आता। पाश्चात्य विद्वानों की रचनाएं अनन्त रुचि से पढ़ी जाती हैं और हर कोई प्लेटो और सुकरात का नाम ले कर फूला नहीं समाता। कीट्स, टेनसन, और शेक्सपियर के नाम इन भारतीय युवक युवतियों के जिह्वा पर रहते हैं और अपने वार्तालाप में भी भाषण और लेखों में उन की उक्तियों व संकेत दे कर अपनी सभ्यता और योग्यता को नाप करते हैं। उन की दृष्टि में उन के विचार महान, उत्तम, और पूर्ण हैं। अपनी संस्कृति और सभ्यता का तो उन्हें कुछ बोध ही नहीं होता। अपने देश की आदर्श विभूतियों की आदर्श जीवन झांकियां कभी उन्हों ने देखीं हो नहीं। उन के महान ज्ञान के जगत में कभी प्रवेश ही नहीं किया, वेदों और उपनिषदों के पन्ने उलटा कर हमारे

भारतीय वार्ता ने उन के रहस्य को पर समझा और बौद्ध शास्त्रों को पिटारी का ढकना उन्हों ने कब उठाया है। जैन आगमों के विशाल सागर म पड़े ज्ञान के मोतियों को हमारे देश के सुयोग्य तरुण तरुणियों ने कब ढूंढा है। यदि एक बार भी हम ने अपने ज्ञान के महोदधि में गहरे उतरा होता तो हम अपने भारतीय दर्शनों के उपहास का पाप एकत्र न करते। और विदेशी जड़वादियों के वचनों पर हमारी आस्था न होती और यूँ ही उन के गलों में प्रशंसा की मालाएं न पहनाई जातीं। केवल जड़ तक ही उन की दौड़ है न। खाओ पीओ और मौज उड़ाओ' ही उनके जीवन का मूल मन्त्र है न। धर्म और आत्मा के शब्द हैं कहाँ उन के विचार क्षेत्र में। सत्यं, शिवं और सुन्दरं का तो उन जड़वादियों को स्वप्न भी न आया होगा। आध्यात्मिकता का शब्द तो उन के कानों ने कभी सुना ही नहीं। उन के ज्ञान का वायुयान उड़ रहा है भौतिकता के आकाश म।

माना कि विज्ञान ने चहुँमुखी उन्नति की है और कर भी रहा है। इस की चमक ने संसार को चकाचौंध कर दिया है। मनुष्य ने पक्षियों की तरह आकाश में उड़ना सीख लिया है और मछली की भान्ति समुद्र में तैरना भी सीखा है। इस मनुष्य ने सब कुछ सीख लिया किन्तु हा! इस ने प्रेम-प्यार से धरती पर शान्ति से रहना न सीखा। आज यह वैज्ञानिक युग का जन्तु है। एक दूसरे के विनाश के साधन जुटाने म और नवीन नवीन अनुसन्धान करने में दिन रात एक कर रहा है किन्तु अपने आप को खोजने का उस के पास एक मिनट का अवकाश नहीं। याद रहे, विश्व का रीढ़ चरित्र है, विज्ञान नहीं। माना कि विज्ञान संसार को जीवन की हर सुविधा प्रदान करता है उसे लौकिक सुखों से भरपूर करता है किन्तु कभी कभी यह ही विज्ञान संसार को लाखों नर-मुण्डों की माला भी पहना देता है।

नैज्ञानिक उन्नति अच्छी है किन्तु चरित्र के बिना उस का कुछ मूल्य नहीं है। चरित्र हीन विज्ञान एक संहार है। जड़वादी चरित्र और उसके विकास को क्या जानेंगे भला ? धार्मिकता के बिना चरित्र का काम नहीं होता। धार्मिकता पनपती धर्म को पहचानने से। धर्म क्या है ?

अहिंसा सयमो तवो

बस, यही सच्चा मनुष्य का नैसर्गिक धर्म है और जिस पुस्तक में हमें इस की झलक मिले बस वह ही पठनीय और मननीय पुस्तक या ग्रन्थ समझना चाहिये और उसी का पठन-पाठन और परिपालन सच्चा स्वाध्याय कहा जाएगा, शास्त्र में कहा भी है

ज सोच्चा पडिवज्जति
तव खंति महिंसय

मैं यह नहीं कहता कि अभारतीय ग्रन्थों को पढ़ना नहीं चाहिये। मेरा अभिप्राय केवल इतना ही है कि दूसरों के घर का ज्ञान करने हुए या करने से पहले अपने भी घर का ज्ञान कर लेना चाहिए। तभी हम तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे और दोनों की अच्छाई और बुराई का हमें भली भांति पता चल जाएगा। विष हेय है और अमृत है उपादेय।

हमें तो सुगन्धित फूल चाहिये चाहे वह अपने बाग का हो चाहे दूसरे के बाग का। हमें तो मधुर पेय जल चाहिये चाहे वह अपने कुए का हो चाहे अन्य के। हमें तो अहिंसा सयम और तप से मंजा हुआ उज्ज्वल और पुनीत चरित्र चाहिये। उस की शिक्षा अभारतीय या भारतीय चाहे किसी भी पुस्तक व ग्रन्थ से मिले हमारे लिये तो वह ही स्वाध्याय ग्रन्थ है। हमें चाहिये कि हम व्यर्थ अंट-संट पुस्तकें न पढ़ा करें और अपने

हुए श्रेष्ठ पुस्तकों के अध्ययन में लगाएं जिस से सच्चा ज्ञान ले कर हम अनासक्त भाव से दुनिया में रह सकें और अपने मन को संयमित करने के लिये प्रयास किया जा सके।

अभ्यास से ही मनुष्य अपूर्ण से पूर्ण बनता है पहले पहल जब एक बालक अपने नन्हे मुंहें हाथ में लेखनी पकड़ कर तख्ती पर लिखता है तो वह बिचारा अपने स्याह के अन्तर बना नहीं सकता, यूं ही टेढ़ा मेढ़ी लकीरें खींचता रहता है। धीरे धीरे अभ्यास से उस का हाथ छाप का भी मात करने लगता है। यह चमत्कार किस का ? केवल अभ्यास का।

एक कलाकार चित्र बनाने में एकदम ही प्रवीण नहीं हो जाता। प्रतिदिन का अभ्यास उस की तूलिका को जड़ में जान डालने में प्रवीण बना देता है।

साइकल एक दिन में नहीं सीखा जाता है इस के लिये अभ्यास करना होता है। एक दिन वह भी आता है जब वह अपने साइकल पर असवार होता है। उस का एक छोटा भाई आगे बैठा है लेकिन उसकी पीछे कैरियर पर बैठी हुई है। उस के दो नन्हे मुन्हे उस के दायें-बायें कन्धों पर चढ़े बैठे हैं और उस शेर असवार ने अपने दोनों हाथों से हैन्डल को आज़ाद कर रखा है किन्तु फिर भी वह भीड़ भरे बाज़ार से साफ बच कर निकल जाता है। यदि देखा जाये तो यह अभ्यास का ही फल है।

हर कार्य की सफलता और सिद्धि का अभ्यास मूल है किन्तु अभ्यास नियमित होना चाहिये। यदि उस में विघ्न न पड़े फिर तो हम एक न एक दिन अपने लक्ष्य तक पहुँच जाएंगे।

मन को साधने का भी अभ्यास करना होगा। कहा जाता है कि मन पवन और देवता से भी अधिक चंचल है। गीता में

'वायोरिव सुदुष्करम्' कह कर इस की चंचलता का दिग्दर्शन कराया गया है।

एक मिनट के लिये ख्याल कीजिये कि आप एक देवता को वश में करना चाहते हैं आप अपना मन्त्र पढ़ते हैं तो क्या उसी दम वह देव आप के चरणों में उपस्थित हो जाता है? नहीं उस के लिये निरंतर प्रयत्न करना पड़ता है। कई वर्ष बीत जाते हैं फिर भी उस की सिद्धि में शंका बनी ही रहती है। मन का देवता तो उस से भी अधिक वेगवान है फिर यह एक नमस्कार से ही आपके अधीन कैसे हो जाए, उस के लिए आप को दीर्घ अभ्यास करना होगा। अपने अभ्यास के लिये किसी भी मन्त्र का आश्रय लिया जा सकता है। मन संयम के पश्चात अब कुछ वाणी के संयम की व्याख्या के रंग में रंगने का प्रयत्न किया जाएगा।

वाणी

वैसे तो मन के निग्रह से ही वाणी और शरीर का नियन्त्रण हो जाता है क्योंकि मन एक केन्द्र है यदि नदि के केन्द्र से कोई विचार तरङ्ग न उठे तो उसकी तरङ्ग लहर बन कर किनारों तक नहीं पहुँच सकता। मन का विचार ही आगे बढ़ कर वाणी और शरीर द्वारा कर्म के साचे में ढलता देखा जाता है। किन्तु फिर भी इन के संयम का कोई उपाय तो होना ही चाहिए। यदि अपनी वाणी और शरीर का संयम से साध लिया जाये तो हमारा मन भले ही कुछ देर के लिये उड़ता फिरे किन्तु आप देखेंगे कि वह विचारा अपने आप में आप सीमित हो जायेगा और धीरे धीरे उस की सङ्कल्प–विकल्प की पाँखें झड़ जायेंगी और उस की उड़ान स्वत बन्द हो जायेगी। अपने मन को वचन-लोक और काय-लोक में आने से रोकने के लिये संयम से काम लेना होगा।

लोग अपनी वाणी को अपने काबू में नहीं रखते। व्यर्थ की बातचीत में लगे रहना और निष्प्रयोजन और अंट संट बातों में समय खोना मानों अपने लिये अनर्थों को निमन्त्रण देना है। हमारे पारिवारिक सामाजिक और राष्ट्रीय क्लेशों, द्वन्द्वों और उपद्रवों का बहुत बड़ा कारण हमारा वाणी का असंयम है। किन्तु हम इन बातों का ध्यान कब रखते हैं। यूं ही दूसरों पर वज्र गिराते रहते है हम। हमारे वचन-बाण भी तो अग्नि बाण हैं। दूसरों के जीवन में आग लगा देते हैं। छोटी सी बात पर महा भारत छिड़ जाता है। दो इन्च की छोटी सी जबान छह फुट के आदमी को मार देती है।

जो लोग बोलने की कला जानते हैं वह अपने शत्रुओं को भी अपना मीत बना लेते हैं और जनता के हृदयों पर छा जाते हैं। हमारी वाणी विचार की तुला पर तुले बिना जब निकल आती है तो यह जीवन जगत को क्लेश का अंगारा बना देती है। "पहले तोलो फिर बोलो" की लोकोक्ति धीमानों के मस्तिष्क की पहली विचारणा है।

कई तो बड़े पक्के सत्यवादी होते हैं। वे कहा करते हैं कि 'जी हम तो सच सच कह देते हैं चाहे किसी को बुरा ही लगे। हमें नहीं आता झूठ बोलना। हम तो साफ साफ कहते हैं और मुंह पर कहते हैं, जिस ने जो करना हो करले' ऐसे सत्यवादी असल में सत्य से बहुत दूर होते हैं। वे तो केवल सत्य की आड़ ले कर दूसरों का अपमान करते हैं और अपनी ईर्षा अग्नि से जलते दिल को ठण्डा करने का प्रयत्न करते हैं। वह स्वयं झूठों के शिरोमणि हुआ करते हैं और उन की हर बात दम्भ और कपट भरी होती है।

सत्य को उपस्थित करने का भी एक ढंग होता है। सत्य कहते हुए अपनी मानवता और सभ्यता का जनाजा नहीं निकाला जा सकता कलहकारिणी वाणी का सम्मान नहीं किया जा सकता। सरलता, विनम्रता और मधुरता मनुष्य के वचन के अनमोल भूषण हैं। इन के बिना इस की शोभा नहीं। इस विषय पर एक उदाहरण उपस्थित किया जाता है। किसी नगर का एक नरेश था। वह बड़ा प्रतापी और अपनी प्रजा का सच्चा हित चिन्तक। उसे विद्या और विद्वानों से विशेष प्रेम था। वह स्वयं भी विभिन्न विद्याओं में विख्यात था। उसे पंडितों से ज्ञान चर्चा करने में आनन्द आता था। उस की राजसभा भी विद्वान मन्त्रियों का एक सदन था। एक दिन उस ने यूं ही विनोद में किसी मन्त्री से पूछ लिया, मन्त्री वर! 'देवता कौन सा अच्छा? फल कौन सा श्रेष्ठ? फूल कौन सा बढ़िया और

मिठास किस की अच्छी ?' मन्त्री ने झट उत्तर देते हुए कहा—'प्रजानाथ ! मेघमाली देवता सब से अच्छा होता है। फल पुत्र का, फूल कपास का और मिठास सब से अच्छी होती है ज़बान की।' राजा प्रसन्न हो गये और उस की बुद्धि का सराहना करने लगे।

बन्धुवर ! हमें भी चाहिए कि हम अपनी वाणी में मिठास भरने की चेष्टा करें। मीठी वाणी के साथ साथ मन भी मीठा होना चाहिए, यदि ऐसा न हो सकेगा तो 'विषकुम्भं पयोमुखम्' वाली बात बन जायेगी।

बहुत से लोग अपना स्वार्थ निकालने के लिये मधुरभाषी बन जाते हैं। ठग भी मधुर मधुर बोलने में निपुण होते हैं क्योंकि कहा जाता है कि—

प्रियवक्ता भवति धूर्त्तजनः

इस का अर्थ कोई यह न समझ लेना चाहिए कि सभी प्रियवक्ता धूर्त्त होते हैं बल्कि धूर्त्त लोग प्राय प्रियभाषी होते हैं, आप याद रखिये कि यह मधुभाषिता उन के जीवन का गुण नहीं समझा जायेगा इस का अंतिम परिणाम जन समाज के लिये नितान्त अहितकर होता है। उन के यह मीठे और मन भावन बोल बिचारे भोले भालों को लुभा लेते हैं और वह उन के झांसे में आकर सब कुछ लुटा बैठते हैं। अतः वचन सरलता के साथ साथ मन की सरलता अवश्य रहना चाहिये। दुष्प्रवृत्तियों की ओर से रोक कर वाणी को सद्प्रवृत्तियों में लगाना यह संयम का प्रथम पग है। धीरे धीरे उसे मौन की ओर मोड़ना चाहिये।

सहनशीलता के बिना तो वाक्-संयम कठिन ही है। आज

इन सब गहन शास्त्रों का निरूपण दिखाते हुए हैं। यही तो कारण है कि हर घर युद्ध भूमि बना हुआ है। एक दूसरे को गिराने का फल बना है। परस्पर दया का भाव समाप्त हुआ है। इस तरह परिवार, समाज और राष्ट्र का सारा वातावरण विषाक्त हो गया है जिस से नित्य नये नये झगड़े उत्पन्न होते रहते हैं। पारस्परिक निन्दा से ही अनेक झगड़ों का सूत्रपात हो जाता है। निम्न उदाहरण इस को और भी स्पष्ट करेगा—

एक बार एक लड़की जब पहली बार अपनी ससुराल से लौट कर घर आई तो माँ ने पूछा, बेटी!—'बता! तुम्हें वहाँ का व्यवहार कैसा लगा है न, कि तुम्हें ससुराल में दुःख तो नहीं हुआ?' बेटी बोली—माँ! और तो सब अच्छे हैं। देवर, जेठ और ससुर सब मेरे अनुकूल हैं और पति महाराज तो नितान्त सरल हैं। उस परिवार का कोई दुनिया का कुछ पता ही नहीं। वह तो मेरे हाथों की कठपुतली है। और सब कुछ ठीक है किन्तु मेरी सास मुझे बिलकुल नहीं सुहाती और न उसे मैं ही भाती हूँ। जरा जरा सी बात पर रूठ जाती है और फिर सारे दिन कुछ कुछ बकती रहती है। यदि मैं कभी उत्तर दे देती हूँ तो क्रोध में आग बबूला हो कर चिल्लाने लगती है। आ पड़ोस में जाती है, बक-बक करती है। सारे मुहल्ले भर को उठा लेती है। उस समय लाल आँखें निकाल कर मेरी ओर देखती है, मुझे तो डर लगने लगता है कि न जाने मुझे क्या हो जायगा। वैसे तो भगवान की बड़ी पूजा करती है, नित मन्दिर जाती है। व्यवहार में सब से अलग। किन्तु जब ऐसा निकालेगी, तो दूसरे के सामने भी आग लगा दे। मैं तो उस के हाथ से दुःखी हो गई हूँ माँ।' उसकी पुत्री की सब बातें सुन कर उस की माता ने कहा। 'बेटी चिन्ता न कर। मैं तुम्हें एक ऐसा मन्त्र देती हूँ जिस से फिर कभी तुम्हारे घर में कलह कभी न हो और घर में शान्ति बनी रहे। यह कह कर वह माँ

भीतर गई और लकड़ी का एक छोटा सा मगर मुखद टुकड़ा उठा लाई और अपना लड़की के सामने आ कर उस ने अपनी आंखें मूँद लीं। दो चार बार मुँह ही मुँह कुछ मन्त्र पढ़ा और उस काठ के टुकड़े पर हर बार फूंक मारती रही। अपना कार्यक्रम समाप्त करने के बाद वह अपना पुत्री से बोली 'लो यह मन्त्र। जब तुम्हारी सास कुछ कहे सुने, तब तुम मेरे मन्त्र को दांतों तले दबा कर बैठ जाना। जब तक वह बोलती रहे, तब तक यह दांतों के नीचे रहे। निकलने न पावे। यदि यह दांतों से छूट गया कहीं, तो कुछ इस का फल कुछ भी न होगा। तुम्हारा दुःख कभी शान्त न हो सकेगा।

वह उस मन्त्र को लेकर ससुराल चली गई और एक दो दिन के बाद ही दांतों में उस गई। बहू ने अपना मन्त्र निकाला और उसे दांतों से दबा कर बैठ गई। उस का सास बोलती चली गई। किन्तु इधर से कोई उत्तर नहीं आ रहा था। लड़े तो किस से लड़े। अन्त में उसे चुप होना पड़ा। अड़ोस-पड़ोस के लोग कहने लगे 'देखो, यह बहू बिचारी बोलती तक नहीं, और यह चुड़ैल यूँही बक बक करती जा रही है। न जाने, इस ने लड़की को कैसे किस घर से लिया है। निष्कारण ही लड़ रही है। कुलहीन के यही लक्षण होते हैं। इस के मां बाप भी ऐसे ही होंगे। बोलते जरा लज्जा नहीं आती इसे।' सब इस तरह उस की निन्दा करने लगे। और उस का मुँह को भला कहने लगे। उस की सास ने देखा कि मेरी तो बुराई हो रही है और इस की हो रही है प्रशंसा। मैं बुरी क्यों बनूं। धीरे धीरे उस ने भी लड़ना छोड़ दिया। घर में अब शान्ति रहने लगी।

उपरोक्त दृष्टान्त हमें सहन शीलता और मौन रहने की शिक्षा सिखाता है। वाणी के घाव बड़े गहरे होते हैं। इन से वैर शत्रुता

है। वैर से हिंसा और हिंसा से पाप होता है।
भगवान महावीर का प्रवचन भी यही है—

> वायादुरुत्ताणि दुरुद्धराणि
> वेराणुबंधीणि महब्भयाणि

प्रभु फरमा रहे हैं कि मार्मिक वचन बड़े भयंकर होते हैं इन का हृदय से निकलना कठिन हुआ करता है इन से ही [illegible] दुर्गति का बन्ध होता है। हर व्यक्ति को अपना वचन-शक्ति के प्रयोग में संयम से काम लेना चाहिये और हर बात विवेक की कसौटी पर तुल कर निकलनी चाहिये। तभी हम अहिंसा के सच्चे पुजारी बन कर धर्मेश्वर बन सकेंगे।



शरीर

वाक संयम के बाद हमें अब शरीर नियन्त्रण पर भी कुछ विचार करना है क्योंकि मन और वाणी की तरह शरीर भी एक महान कर्म योग है। मन के भाव का मूर्त्तरूप तो शरीर ही देता है न। मन में तो असंख्य विचार-लहरियां उठती हैं, यदि शरीर उन का साथ न दे तो उन को व्यवहारिक रूप नहीं मिल सकता और इस तरह साधन बुरे कर्मों के कीचड़ में गिरने से बच सकता है।

यह शरीर यूँही नहीं मिला। पुण्योदय से ही हाथ लगा है यह अनमोल रत्न। अनेकों घाटियां पार करनी पड़ी हैं इस के लिए। पहले भी कई बार यह शरीर हम को मिल चुका है किन्तु यह सफलता की पगडण्डी पर न चढ़ सका क्योंकि इसे संयम की डोरी से बान्धा न गया, यदि बान्धा भी तो कच्चे धागे से। आप को यह दुर्लभ शरीर फिर मिला है, जो धर्म का सब से पहला साधन है, कहा भी है—

शरीरमाद्यम् खलु धर्मसाधनम्

यह वह शरीर है जिस को पा कर मनुष्य आत्म-साधना करता है और धीरे धीरे अपने लिये परम-धाम के आनन्दमय द्वार खोल लेता है। किन्तु स्मरण रहे कि जब जीवन शक्तियां उन्मार्ग गामिनी हो जाती हैं तो यह शरीर उसे घोर सातवां नरक में भी पहुंचा देता है, जहां सिंह और सांप भी मर कर नहीं जा सकते। मनुष्य के लिए यह मोक्ष द्वार भी है। इस का सदुपयोग और दुरुपयोग उस के अपने हाथ में है। उस की एक मुट्ठी में स्वर्ग और दूसरी में नरक है। यह

इस जीवन में सब कुछ पा सकता है और सब कुछ खो सकता है। यह मनुष्य अपना आप मित्र और अपना आप शत्रु है। इसे अपने शरीर को संयम में रखना चाहिये। इसी में इस का हित है।

जो लोग अपने स्थूल शरीर को ही वश में नहीं रख सकते, अपने आप को अपकृत्यों से परे रख नहीं सकते, वह भला मन और वाणी का नियमन क्या करेंगे। यदि आप इन दोनों को वश न पाते तो कम से कम आप को अपने शरीर पर पूरा पूरा अधिकार होना चाहिये, आप को अपनी समस्त इन्द्रियों का स्वामी होना चाहिये। किन्तु यहां तो उलटा ही रंग चढ़ रहा है इन का सारा इन्द्रियां आप पर असवार रहती है और आप को बन्दर की डोरी से बांध कर स्थान स्थान पर बानर की तरह घुमाती फिरती हैं। आप का शरीर आपे से बाहर होकर ऊँट पटांग कुचेष्टाएं करता रहता है और हर घड़ी अपने लिये एक कर्म जाल रचता रहता है और उस में स्वयं ही बन्दी बन कर कष्ट उठाता है।

शरीर का यदि निरोध न हो सके तो इस का सदुपयोग में लगाया जा सकता है न। यदि कोई प्राणी गिर पड़ा हो। उसे हाथों से पकड़ कर उठाया जा सकता है। किसी दुखिया के कन्धे पर हस्त फेर कर उसके आँसू पोंछे जा सकते हैं।

किसी डूबते हुए को बचाया जा सकता है। किसी [illegible] की सेवा से तुम्हारे हाथ पुण्य का संचय करते हैं। किसी प्यासे को पानी का घूंट पिलाने और भूखे को अन्न प्रदान करने से तुम्हारे हाथों को यश की मेहंदी लग सकती है। [illegible] अनमोल अंगूठियों से यह हाथ आप [illegible] सकते हैं।

यह पाओं भी आप के क्या कुछ [illegible]

दुनिया के पास पहुँच कर उनकी खबर-सार ले सकते हैं। आप के धर्म सत्संग के अथाह समुद्र से ज्ञान के निर्मल मोती ढूँढ कर ला सकते हैं। आप के ये दो पग किसी माँ, बहिन की लुटती लाज को दौड़ कर बचा सकते हैं, जन हित के और भी सैंकड़ों काम किये जा सकते हैं।

आज के लोग मूर्ख बने फिरते हैं और अपने शरीर और इन्द्रियों का दुरुपयोग कर रहे हैं।

आप के हाथ दूसरों का घात करने और किसी का सतीत्व लूटने में बड़े चतुर हैं। किसी निर्बल की मार कुटाई करने में आप के हाथ कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखते। कम तोलने कम मापने और खरे में खोटा मिलाने में आप के हाथ कभी संकोच करते हैं। झूठे लेख लिखने में भी ये कब पीछे रहते हैं। घूस देने और लेने में आप के हाथ कब शरमाते हैं। बिचारे पक्षियों को गोली का निशाना बनाने और बेजबान पशुओं का गरदनें उड़ाने में आप के हाथ कब थर्राते हैं भला?

अब अपने पाओं की कहानी भी सुनिये। यूँही गली बाजारों को नापते फिर रहे हैं। कहीं सिनेमा के और कहीं वेश्यालय के चक्कर काटे जा रहे हैं। मधुशाला की ओर भागे भागे जा रहे हैं। खेल तमाशे की ओर यूँही लपक पड़ते हैं। इतने चंचल हैं आप के दो कदम इन्हें जरा सद्कार्यों में लगाइये और इसे धारे धारे संयम की जंजीरों से बाँधिये।

भगवान महावीर सच पूछो तो संयम की मूर्ति थे, उन्हों ने इसी संयम की शक्ति से ही आत्म शान्ति प्राप्त की। भगवान से एक बार उन के शिष्य गौतम ने पूछा था कि भगवान

भगवान ने उत्तर दिया, गौतम !

जय चरे

इस श्लोक में ये हमारे देवाधिदेव ने इन्हें अपनी समस्त क्रियाओं को संयम की सीमाओं में रखने का आदेश दिया है। शास्त्र में एक उक्ति है—

कम्मेहा संयम जोगसंती

कर्म का ईंधन और संयम को शान्ति पाठ माना गया है। या यूँ कहिये कि संयम ही शान्ति का मूल मन्त्र है।

यहां पर इन्द्रियों के बारे में भी दो विचार कर लेने चाहिये। हमारा इन्द्रियां विलास-भूमि में क्रीडा करने के लिये भागी जाती हैं। जरा इन्हें भी संयम की रस्सी से कस कर बांध डालिये। आप अपने कानों को भले बुरे शब्दों से परे रखिये। उन्हें अपने अन्दर राग और द्वेष का बीज न बोने दें। रूप रंग के फूलों पर आप की आँखें मंडराने के लिये दौड़ी जा रही हैं तो ज़रा इन्हें रोकने का कष्ट तो उठाइये। इस तरह अपनी हर इन्द्रिय को अपने आप में रखिये तो सदा अक्षय सुख निधि आप के साथ रहेगा।



तप

संयम पर दो चार पंक्तियाँ लिखने के पश्चात् अब हम तप की ओर चलते हैं। यह भी धर्म का तीसरा महान अंग है। वास्तव में देखा जाये तो तप, संयम और अहिंसा तीनों ही परस्पर स्नेह सूत्र में बंधे हुए हैं। तप के बिना संयम की रक्षा नहीं हो सकती और बिना संयम के अहिंसा भगवती की आराधना हो नहीं सकती। जिस का अपने मन, वचन और इन्द्रियों पर पूरा अधिकार होगा वह दूसरों की हिंसा क्योंकर कर सकते हैं। जहाँ अहिंसा रहेगी वहाँ संयम और तप भी रहेगा ही। ये तीनों ही एक दूसरे के सहायक एवं पूरक हैं। इस त्रिमूर्ति का नाम ही धर्म है। जिस के मन के सिंहासन पर यह विराजमान हो वह ही धर्मात्मा है और वह ही महात्मा है। आगे चल कर वह ही परमात्मा होगा।

इच्छा निरोध का नाम ही 'तप' है। इच्छा ही जीवन का अधूरापन है। यह मनुष्य को पूर्णता की ओर अग्रसर नहीं होने देता। एक इच्छा अभी समाप्त नहीं होने पाती कि अनेकों और उठ खड़ी होती हैं। इच्छा का एक चक्र सा चल पड़ता है जिस के चंगुल से निकलना ही कठिन हो जाता है। तप इच्छा पर एक प्रतिबंध है इस के बिना इच्छा उपशान्त नहीं हो सकती। मनुष्य के चारों ओर कामनाओं का एक जाल बिछा हुआ है और उस में फंसा मछली की तरह तड़पता रहता है। बाल्यकाल से ले कर अन्तिम समय तक यह कामनाओं का ताना बाना बुनता रहता है। मरने के बाद भी इच्छा इस को कहाँ छोड़ती है। यह तो इस के साथ परलोक में भी जाती है। गति-परिवर्तन का आखिर मूल तो यही है। दुःख सुख का भूला

ता बने भुलाता है। इच्छा ही इनसान और भगवान के बीच का परदा है यदि यह उठ जाये तो इनसान और भगवान एक हो जायें। तभी तो कहा है-

God + Passion = Man
Man — Passion = God

मनुष्य युगों युगों से सोऽहं की रट लगाता चला आ रहा है किन्तु तप के बिना यह उक्ति भी सत्य नहीं हो सकती क्योंकि इच्छा-निग्रह बिना तप के असम्भव है। भगवान महावीर ने इसे तीसरे स्थान पर रख कर इस बात की सूचना दी है कि इस के बिना संयम और अहिंसा का पालन नहीं हो सकता है।

तप क्या है? इस बात को समझ लेना चाहिये क्योंकि बहुत से लोग बिना सोचे समझे इस के साथ चिपटे रहते हैं। जिस से उन्हें यथार्थ लाभ नहीं हो पाता।

केवल भूखे रहने का नाम ही तप नहीं बहुत से महानुभाव अपने शरीर को भूख से सुखा कर कांटा बना देने में अपना गौरव समझते हैं। अपने आप को बड़े तपस्वी मान कर फूले नहीं समाते। अजी साहिब, शरीर शोषण का नाम ही तप नहीं है इस के साथ साथ मन के अप्रशस्त विचारों का भी तो शोषण होना चाहिये। तभी तो आत्मा का पोषण होगा ना इधर मारे भूख के प्राण निकल रहे हैं, शरीर दुबला पतला होता जा रहा है। उधर क्रोध लोभ, मोह, अहंकार आदि कुत्सित भाव और अधिक उभर रहे हैं। बात बात पर आँखें लाल करते हैं। दूसरों का धन बटोरने में दिन रात लगे रहते हैं। यदि कोई बिचारा भोली पसार कर मांगने आ जाये द्वार पर, तो उसे सौ सौ गालियां सुनाई जायेंगी। दूसरों का

असमात तो एक चुटकी म ही कर देते हैं। बताइये ऐसे लोगों का तप भला क्या रंग लायेगा ? तप किया जाता है आत्म शान्ति के लिये यदि वह शान्ति ही न मिला तो ऐसा तप किस काम का ? शान्ति हा तप का आभा है। तप शान्ति का एक महान साधन है।

हम क्योंकर अशान्त हैं इस के लिये एक छोटा सा उदाहरण लिख रहा हूँ आप पढ़ लिये—

यह एक महाजन का चौका है। आग चूल्हे में जल रही है। उस पर एक दूध का बरतन रखा है। उस के पास एक नयी नवेली बहू एक लम्बा सा घूंघट निकाले बैठा है। सासू झाडू लेकर घर बुहार रहा है। इतने में दूध लगा उफनने। उस ने नीचे से आग और तेज कर दी और उपर से लगी पानी के छींटे देने। दूध कब शान्त होने लगा। वह उफन उफल कर बाहर गिरने लगा। यही दशा हमारे मन की समझनी चाहिए। एक ओर प्रमादिनी इन्द्रियें दूसरे अमर्यादित आहार फिर यदि मन म अशान्ति रहे तो इस में आश्चर्य क्या ? तप हा इस का निरंकुशता को दूर कर सकता है।

कइ लोगों का ख्याल है कि तप करने से बनता क्या है। यूहीं अपने शरीर को कष्ट देने से क्या लाभ है भला ?

जब वे लोग तप के भेदों को समझ लेंगे तब वे ऐसी बेढंगी बातें नहीं करेंगे। लोगों ने यह समझा हुआ है कि केवल भूखे रहने का नाम हा तप है। और कोई तप है ही नहीं, किन्तु बात ऐसी नहीं है। हमारे अहिंसा के अवतार भगवान महावीर ने तप के भी दो भेद कर दिये हैं।

१ बाह्य तप

२ अन्तरङ्ग तप

इन दोनों तपों पर कुछ कलम चलाने से पहले मैं आप को तप की आवश्यकता और स्पष्ट रूप से बतलाना चाहता हूँ।

आप ने पूछा कि तप से क्या होता है ? मैं पूछता हूं आप से कि सोने को कुठाली में डाल कर आग में रखने से क्या होता है ? आप कहेंगे कि सोना शुद्ध होता है। ठीक है, इसी तरह भगवान महावीर ने फरमाया कि आत्मा के स्वर्ण को जो शरीर की कुठाली में पड़ा है उसे तप की आंच देने से वह भी शुद्ध होता है। शरीर को कष्ट दिये बिना कुछ मिलता भी तो नहीं और दूसरी बात यह है कि वह कष्ट आप की दृष्टि में ही कष्ट है किन्तु उस आत्म तपस्वी को कोई कष्ट नहीं क्योंकि समत्व के सामने कष्ट टिक नहीं पाता। जैसे माखन से शुद्ध घी निकालने के लिये हंडिया को तपाना और काला करना पड़ता है ठीक इसी तरह आत्मा से कैवल्य और परमानन्द का शुद्ध घी निकालने के लिये शरीर के इस भाजन को तपस्या की आग पर चढ़ाना ही पड़ता है। किन्तु केवल आहार-त्याग को ही कहीं तप न समझ लेना क्योंकि एक रोगी महीनों ही कुछ खाता-पीता नहीं फिर भी वह तपस्वी नहीं हो जाता।

मङ्गल मूर्ति भगवान महावीर ने जो तप की एक अनूठी एवं आकर्षक व्याख्या की है उसे जरा हृदयङ्गम कर लेना चाहिये। जरा बाह्य तप के प्रकार देखिये —

अनशन

भोजन का परित्याग ही अनशन है यह अनशन शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी लाभदायक है। इस से शरीर को स्वास्थ्य बल और दीर्घायु आदि फल प्राप्त होते हैं। बुद्धि को स्वच्छता मिलती है। मन में अनूठी शान्ति और आत्मा की शुद्धि के दर्शन होते हैं। बहुत से लोग देखी देखा अनशन कर लेते

है। जब भूख जोर मारती है तो फिर हाय तोबा मचाते हैं। ऐसे मेरे महानुभावों को 'यथाशक्ति' शब्द को भूलना नहीं चाहिये क्योंकि हर काम शक्ति अनुसार ही करना चाहिये 'जितनी चादर देखो उतने पैर पसारो' की लोकोक्ति को अपनी नजरों के सामने रखना चाहिये जो लोग इस बात का ध्यान नहीं रखते उन्हें बाद में नीचा देखना पड़ता है।

बहुत से लोग उपवास रख कर इधर उधर व्यर्थ घूमते रहते हैं। कोई ताश और शतरंज पर बैठे समय गंवाते हैं तो कोई सिनेमा में आनन्द लूटते हैं। कई दुनिया के काम धन्धों में लगे रहते हैं तो कोई यूँ ही बैठे गप हाँकते रहते हैं। इस तरह भोजन के पैसे भले ही बच जाएं और कुछ थोड़ा बहुत स्वास्थ्य भले सुधर जाये किन्तु आत्मा और मन को शान्ति नहीं मिल सकती। आत्म शान्ति ही तप का उद्देश्य है जिस की पूर्ति इस प्रकार के निस्सार तप से नहीं हो सकती। उपवास का तो अर्थ सीधा है, जिस में उप समीप वास-रहना अर्थात्। आत्मा के पास पास रहना। या यूँ कहिये कि आत्मा के क्षमा सरलता आदि गुणों का चिन्तन करना और उन गुणों को अपने व्यावहारिक जीवन में लाना ही सच्चा उपवास है। और यह करता है कोई विरला ही। भाव हीन अनशनों से मान भले ही मिल जाये किन्तु निर्वाण नहीं मिल सकता। अतः अनशन भावना पूर्ण होना चाहिये।

ऊनोदरी

भूख से कम खाना ही ऊनोदरी है। जो अनशन न कर सकते हों उन्हें पहले इस तप का अभ्यास कर लेना चाहिये। यह तप का पहला पग है। यह एक हलका सा आहार का त्याग है। जिसे करने के लिये थोड़े से नियन्त्रण की आवश्यकता है इस से रोग भी नाश होते हैं और विकार भी। इस में 'मित' शब्द को सदा याद रखना

पाता है। मर्यादित खान पान से मन मग्न प्रफुल्लित रहता है। इस तप का यह भी अर्थ नहीं है कि आप इतना कम भोजन करें जिस से आप निर्बल हो जावें और आप समाज में श्रम भी न कर सकें। यों तो अपनी शक्ति के अनुसार तप ही फल प्रदान होगें। यदि आप इतने दुबले पतले हैं कि आप किसी प्रकार का भोजन छोड़ नहीं सकते, तो कोई बात नहीं, आप आप आप की अन्तरङ्ग तप का तरफ ले जाइए, जो मन्त्र का साधन है। बाह्य तप तो अन्तरङ्ग तप का सहायक मात्र है। वस्तुतः अन्तरङ्ग तप ही मोक्ष का साधक माना जाता है। इसी से सच्चा शान्ति मिलता है।

भिक्षाचर्या

भिक्षाचर से निर्वाह करना भी तप है। किन्तु यह तप तो साधु का ही है। अपने अहंभाव पर विजय पाने का यह एक साधन है। यह भिक्षाटन वृत्ति प्राय हर धर्म में प्रचलित था और है भी। आज यह भिक्षा वृत्ति समाज में निन्द्य समझा जा रहा है क्योंकि बहुत अनाधिकारियों ने इसे अपनी आजीविका का साधन बना रखा है। देश व समाज में आलस्य, प्रमाद अकर्मण्यता आदि दुर्गुण बढ़ते चले जा रहे हैं। जो देता है उसे ही लेने का अधिकार है। जो ज्ञान और चरित्र के पथ पर देश को आगे ले जाता है वे ही–

मधुकर सम वृत्ति

की उक्ति का अनुसरण करते हुये भिक्षा से निर्वाह करें तो यह तप ही होगा।

रस-परित्याग

घी, दूध और दही आदि पदार्थ रस कहे जाते हैं—इन सब का त्याग सर्वथा त्याग है 'रस-परित्याग' तप कहलाता है। इसका दूसरा अर्थ किसी वस्तु का स्वाद न लेना भी हो सकता है। यह भी एक महान तप है

जिस का भाव हाई अथवा अपने में भी अभाव मिलता है। अर्थात्
इस को 'अवसाद' नाम का महातप मानते थे।

कायक्लेश

गरमी और सरदी आदि के प्रहार को अपने शरीर पर सहना
ही काया क्लेश तप कहा जाता है। इस का अभिप्राय शरीर को दुख
देना नहीं अपितु शरीर का साधना है। महात्मात्मा तो साधुता को
जानता था जाता है। इस के बिना व्यक्ति महान नहीं बन सकता।
इस लिये भगवान महावीर ने इस तप को बाह्य में रखा है

संलीनता

अपनी इन्द्रियों को अपने विषयों से मोड़ना, क्रोध अहंकार कपट आदि
कषायों को उभरने न देना और मन, वाणी और काया के अशुभ
व्यापारों को रोकना ही 'प्रतिसंलीनता' नाम का तप है। विद्युत् चान
तपों की अराधना बिना इस तप तक पहुंचना कठिन है तभी तो
इस को अन्त में स्थान दिया गया है। इस के बगैर अपने आभ्यन्तर
तप की श्रेणी का आरोहण नहीं हो सकता। इस लिये इस प्रति
संलीनता तप को एक ऐसा कड़ी पड़ना चाहिये जो दोनों तपों को
मिलाती है। यह बाह्य तप की भावना का अन्तक आप को दिखाई
गई है। अब आप के सम्मुख आभ्यन्तर तप की सारी रसी आवेगी।
भगवान महावीर ने इस तप को भी छह भागों में बांट दिया
है जैसे कि —

प्रायश्चित

जीवन का लक्ष्य है आत्म शुद्धि और यह भाव शुद्धि पर आधारित है।
भावना को विशुद्ध बनाने के लिये ही प्रायश्चित आदि की आवश्यकता
है। जीवन जब तक प्रमाद से भरा है तब तक कोई भूल स्वाभाविक
है। उस की यदि रोक थाम न की जावे तो वह भूल आगे बढ़ कर
समूचे जीवन को ले बैठती है। प्रायश्चित से भूल का सुधार होता

है और भविष्य के लिये मनुष्य सावधानी से काम लेता है। उस की जीवन नैया सुख चैन से कल्याण के तीर की ओर बढ़ने लगती है।

विनय

अपने भावों को विनम्र बनाना और अपने जीवन को भी कोमल भावों में ढाल लेना ही विनय है। जैसे विनीत घोड़ा अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच सकता है, ठीक इसी भान्ति विनयशील मनुष्य ही अपने लक्ष्य को पा सकता है। विनय तो धर्म की जड़ है—जैसा कि भगवान महावीर ने फरमाया

धम्मस्स विणओ मूल

इस लिये मूल को सींचना चाहिये तभी धर्म का वृक्ष हरा भरा होगा। जो माली मूल पर कुल्हाड़ा चला रहा हो और पत्ते पत्ते और डाली डाली को पानी दे रहा हो उस का वृक्ष कभी फूल फल नहीं सकता। आज का प्राणी शुष्क बाह्य क्रियाकाण्ड को खूब सींच रहा है किन्तु खेद ! कि अपने जीवन के विनय आदि श्रेष्ठ गुणों पर छुरी चला रहा है। ऊँचा उठने के लिये विनय की आराधना करनी होगी। तभी सुख मिलेगा। यह विनय एक महान तप है और अखिल गुणों का स्थान है।

वैयावृत्य

निष्काम सेवा करना ही 'वैयावृत्य' है। रोगी और वृद्ध विशेष कर सेवा के पात्र हैं।

मधुर भाषिता और सहिष्णुता सेवक के जीवन के प्रमुख गुण कहे जा सकते हैं। सेवा करने वाला अपने पराये का भेद नहीं रखता। सेवा उस के जीवन का गुण है और वह हर स्थान और हर व्यक्ति के लिये अपने जीवन की भेंट चढ़ाने के लिये तैयार रहता है। सेवा के पथ में अपने आप को होम देना पड़ता है। यह दुष्कर है। कोई विरला ही इसे कर पाता है। यह भी एक उच्च कोटि का तप है।

जात है क्योंकि ये अहिंसा के सहायक है। संसार यदि इस महान धर्म के पथ पर चले तो सुख हमारे चारों ओर खेलता रहे और हम उस से खेल कर जीवन के दिन बिताते रहें। विज्ञान की प्रलयङ्कारिणी शक्तियां अपना मुँह बाये हमारे ऊपर नाचे और आगे पीछे खड़ी हैं इस के विनाश से बचने के लिये हमें धर्म की शरण में जाना होगा। धर्म के अभेद्य दुर्ग में जा कर ही दुनिया से युद्ध का भय टल सकता है अन्यथा नहीं। धर्म समस्त विश्व को अभय दान दे कर जीवन दान देता है। विज्ञान और धर्म यदि इकट्ठे चलें तो जगत में शान्ति के फव्वारे छूटने लगें और एक सुख का साम्राज्य छा जाये! आज का विज्ञान धर्म की अवहेलना कर रहा है। समय आएगा जब कि विज्ञान ऊँचे चढ़ कर गिरेगा और चोटें खा कर रोयेगा।

यह धर्म की शरण में जायेगा। धर्म इस के आँसू पोंछेगा और अपनी सहानुभूति के घूँट पिलायेगा और इसे अपने संग ले कर चलेगा। धर्म और विज्ञान दोनों मिल कर अमन चैन की पताका फहरायेंगे यह धर्म सदा मङ्गल है इस की शरण में जो भी गया सो वह मङ्गल हो गया।



सर्वप्रियता

धर्म और उस के स्वरूप की कुछ झाँकी पिछले पृष्ठों में दिखाई जा चुकी है। अब उस के फल पर भी कुछ विचार हम ने करना है। वैसे तो फल की कामना हृदय में रहनी नहीं चाहिये। फलाकांक्षा साधक की साधना को निर्बल बना देता है क्योंकि यदि कुछ समय तक उसे अपने कर्म का फल न मिले तो उस की श्रद्धा उठ जाती है और वह धीरे धीरे कर्त्तव्य च्युत हो कर भ्रष्ट हो जाता है। निष्कामता में ही कर्तव्य की उच्चता है किन्तु जन साधारण किसी कार्य के फल का ज्ञान बिना उस को करने के लिए उद्यत नहीं होते। फल उन के लिये एक विशेष आकर्षण है। पीछे भी धर्म और उस के फल पर प्रकाश तो डाला जा चुका है किन्तु यहां कुछ विशेष रूप से निरूपण का प्रयत्न किया जायेगा। मङ्गल मूर्ति श्रमण भगवान महावीर ने अपनी गाथा के तीसरे और चौथे पद में फरमाते हुए कहा कि

देवावि तं नमंसन्ति
जस्स धम्मे सया मणो

अर्थात — जिस का मन धर्म में सदा लगा रहता है उस के चरण-सरोजों पर तो देवता भी सर झुकाते हैं।

यहां 'देवावि' शब्द पर कुछ ध्यान देने की आवश्यकता है। क्योंकि इस शब्द के गर्भ में कुछ रहस्य छुपा हुआ है जिस का उद्घाटन हमें करना है। भगवान फरमाते हैं कि धर्मप्रिय पुरुष के चरण तो देवता भी पूजते हैं। इस का तात्पर्य यह है कि जब देवता भी पूजा करते हैं तो मनुष्यों का तो कहना ही क्या है। उस के धार्मिक जीवन से प्रभावित हो कर हर एक छोटा बड़ा उस से प्रेम किये बिना न रहेगा और हर एक को उस पर विश्वास पूरा पूरा होगा और उसे हर एक की पलकों की छाया के भीतर विश्राम मिलेगा। सारा संसार उस का है और वह है सारे संसार का। उसे दुनिया अपने अन्दर देखती है और सारी दुनिया को वह देखता है। उसके यशोगान

धरती से लेकर आकाश मण्डल तक गूँजते हैं। वह तीन लोक का स्वामी बन कर अमरत्व को पा जाता है और वह देवों का भी पूज्य बन जाता है।

यह जरा 'सया' शब्द पर भी विचार कर लेना चाहिये। बहुत से लोग केवल मन्दिर और स्थानक आदि स्थानों में ही धर्मात्मा नजर आते हैं और उस के बाद अपनी दुकान और घर में आकर 'धर्म' को भूल जाते हैं। उन का बाह्य जीवन साफ सुथरा दीखता है किन्तु उन के भीतर हृदय में गन्द भरा रहता है। धर्म का केवल एक ढोंग किया जाता है। धर्म उन के जीवन में उतरा हुआ नहीं होता। ऐसे लोगों के पाद पद्मों पर देवता नमस्कार नहीं करते और जन समाज के लिए वे आदरणीय नहीं हो सकते। इस प्रकार का धर्म का ढोंग तो गोबर की मिठाई पर चांदी का वरक चिपकाने के बराबर है।

इस गाथा का 'सया' शब्द हमारी आँखें खोलता है कि धर्म केवल मंदिर या उपाश्रय में ही नहीं होना चाहिये अपितु वह तो हमारे जीवन के साथ सदा रहना चाहिये। हम कहीं भी जाएं धर्म हमारे साथ जाना चाहिये। धर्म और जीवन का चोली दामन का सा सम्बन्ध है। धर्म और जीवन को अलग अलग नहीं रहना चाहिये। इन दोनों को एकमएक हो जाना चाहिये। तब जाकर आप देवों के पूजनीय बन सकेंगे और सारे विश्व का विश्वास आप जीत सकेंगे। आप के हर कर्म में अहिंसा, संयम और तप की सुगंधि रहनी चाहिये। हमारा पारिवारिक सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन इस भगवान वीर के बताये हुए सच्चे आत्मिक धर्म में रंगा हुआ होना चाहिए। हम अपनी नैतिकता और अपने व्यवहार की प्रामाणिकता के बल से ही अपनी धार्मिकता को नाप सकते हैं। हमारा हर कार्य धर्म की सीमा में रहना चाहिये तभी हम समुज्ज्वल होकर भूतल पर चमकेंगे और सर्वप्रियता हमारे साथ साथ रहेगी। मैं अधिक कुछ कहना नहीं चाहता। अतः मैं अपनी लेखनी को यहीं विश्राम देता हूँ। इत्यलम्॥